July
2025

मासिक

# अरफ़ात किरण

रायबरेली

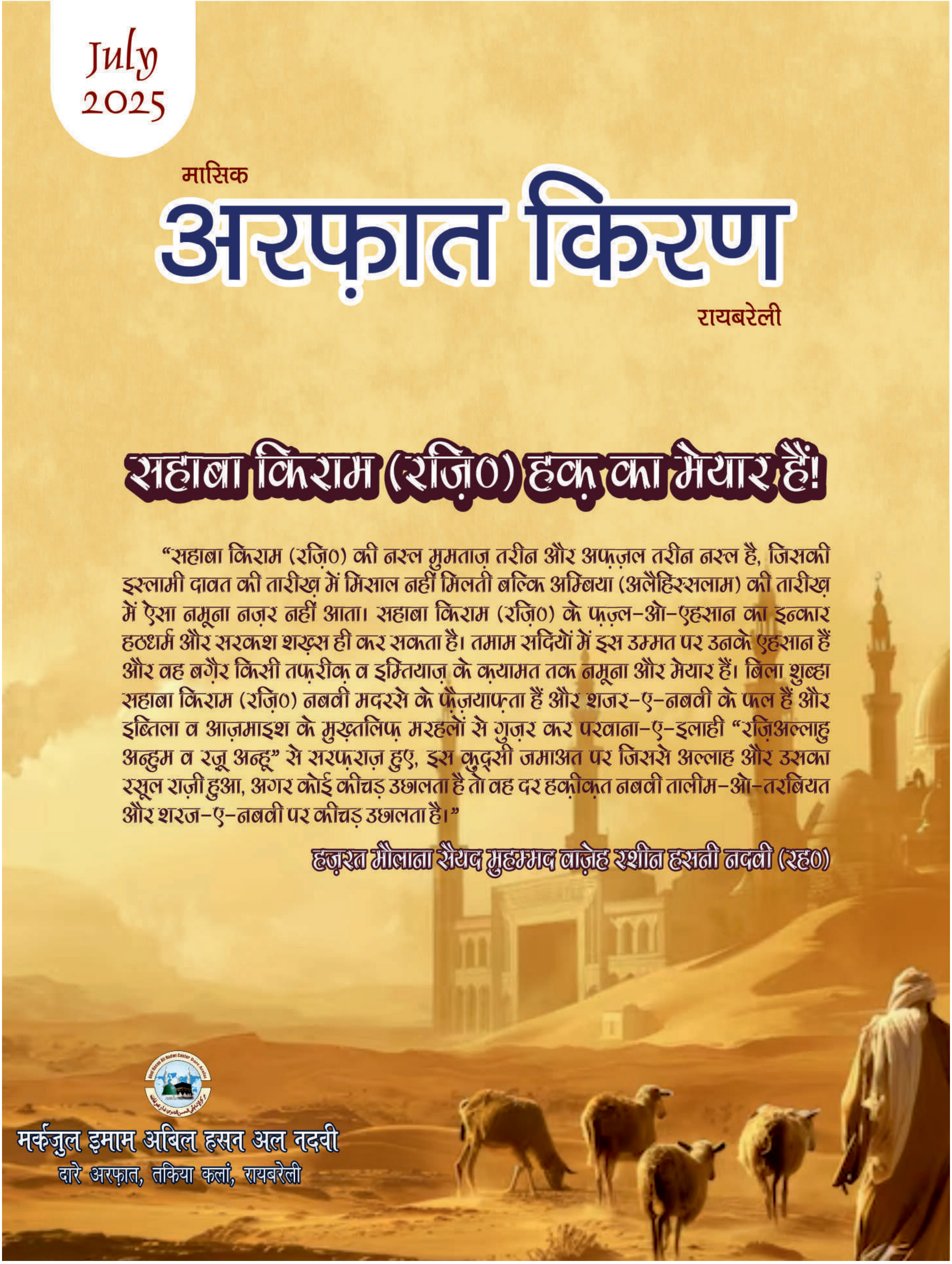

## सहाबा किराम (रज़ि०) हक़ का मेयार हैं!

“सहाबा किराम (रज़ि०) की नस्ल मुमताज़ तरीन और अफ़ज़ल तरीन नस्ल है, जिसकी इस्लामी दावत की तारीख़ में मिसाल नहीं मिलती बल्कि अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की तारीख़ में ऐसा नमूना नज़र नहीं आता। सहाबा किराम (रज़ि०) के फ़ज़्ल-ओ-एहसान का इन्कार हठधर्म और सरकश शख़्स ही कर सकता है। तमाम सदियों में इस उम्मत पर उनके एहसान हैं और वह बग़ैर किसी तफ़रीक़ व इम्तियाज़ के क़यामत तक नमूना और मेयार हैं। बिला शुब्हा सहाबा किराम (रज़ि०) नबवी मदरसे के फ़ैज़याफ़्ता हैं और शजर-ए-नबवी के फल हैं और इब्तिला व आज़माइश के मुख़्तलिफ़ मरहलों से गुज़र कर परवाना-ए-इलाही “रज़िअल्लाहु अन्हुम व रज़ू अन्हू” से सरफ़राज़ हुए, इस क़ुद्सी जमाअत पर जिससे अल्लाह और उसका रसूल राज़ी हुआ, अगर कोई कीचड़ उछालता है तो वह दर हक़ीक़त नबवी तालीम-ओ-तरबियत और शरज-ए-नबवी पर कीचड़ उछालता है।”

**हज़रत मौलाना सैयद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी (रह०)**

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

# अहल-ए-सुन्नत वल-जमाअत

“अहल—ए—सुन्नत वल—जमाअत” तीन लफ़्ज़ों से मुरक्कब है। “अहल” के माने अश्ख़ास, मुक़ल्लिदीन, इत्तेबा और पैरवी करने वालों के हैं।

“सुन्नत” अरबी में रास्ते को कहते हैं और मजाज़न उसूले मुक़र्ररा, रविश, ज़िन्दगी और तर्ज़े अमल के माने में यह लफ़्ज़ आता है, जैसा कि कुरआन मजीद में यह लफ़्ज़ बहुत बार इन्हीं मानों में आया है:

फ़रमाया है:

“यह अल्लाह का दस्तूर उन लोगों में भी रहा है जो पहले गुज़र चुके हैं और आप अल्लाह के दस्तूर में कोई तब्दीली न पाएंगे।” (सूरह एहज़ाब: ६२)

इसी तरह हदीसों में सुन्नत का जो लफ़्ज़ आता है, उसके माने रसूलुल्लाह (स०अ०व०) के मुक़र्ररा उसूल और तर्ज़े अमल के हैं, इसीलिए दीनी इस्तेलाह में हज़रत रसूले अकरम (स०अ०व०) की तर्ज़े ज़िन्दगी और अमल के तरीक़े को “सुन्नत” कहते हैं।

“जमाअत” के लुग्वी माने तो गिरोह के हैं, लेकिन यहां जमाअत से मुराद “जमाअत—ए—सहाबा” है, इस लफ़्ज़ी तहक़ीक़ से “अलह—ए—सुन्नत वल—जमाअत” की हक़ीक़त भी वाज़ेह होती है, यानि इस फ़िरक़े का इत्लाक़ उन लोगों पर होता है जिनके एतक़ादात, आमाल और मसाएल का महवर पैग़म्बरे इस्लाम की सही सुन्नतें और सहाबा किराम (रज़ि०) का मुबारक ज़माना है, या यूं कहिये कि जिन्होनें अपने अक़ाएद और उसूले हयात और इबादत—ओ—अख़्लाक़ में इस राह को पसंद किया जिसपर रसूले मक़बूल (स०अ०व०) उम्र भर चलते रहे और आपके बाद आपके सहाबा उस पर चलकर मज़िले मक़सूद को पहुंचे।

किसी क़ौम में कोई तरक़्क़ी उस वक़्त तक नहीं पैदा हो सकती जब तक उसके तमाम अफ़राद किसी एक नुक़्ते पर बाहर इस तरह मुज्मतेअ न हो जाएं कि वह नुक़्ता—ए—इज्तिमा उनकी ज़िन्दगी का अस्ल महवर बन जाए, उसका तहफ़्फ़ुज़, उसकी बक़ा, उसका वजूद, क़ौम के तमाम अफ़राद की ज़िन्दगी की अस्ली ग़रज़ बन जाए, उस वक़्त उस मज्मूआ—ए—अफ़राद को एक मिल्लत कहा जा सकता है और वही नुक़्ता—ए—इत्तिहाद उनका शीराज़ा—ए—क़ौमियत, रिश्ता—ए—जामियत और राब्ता—ए—वहदत क़रार पाएगा, किसी क़ौम की तबाही का अस्ली सबब यही होता है कि उसकी क़ौमियत की यह गिरह खुल जाती है, तमाम मुज्तमेअ अफ़राद इस तरह मुतफ़र्रिक़ व मुन्तशिर हो जाते हैं कि हवा का एक अदना झोका उनको बिखेर देता है।”

अल्लामा सैय्यद सुलेमान नदवी (रह०)

(माख़ूज़ अज़ रिसाला: अहल–ए–सुन्नत वल–जमाअत)

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِيۡمِ

मासिक

# अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: 7 जूलाई २०२५ ई० वर्ष: 17

## अज़मत-ए-सहाबा (रज़ि०)

**अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:**

"मेरे सहाबा मेरी उम्मत के लिए अमान हैं, जब मेरे सहाबा चले जाएंगे तो मेरी उम्मत पर वह अज़ाब आएगा जिसका उनसे वादा किया गया है।"

(सही मुस्लिम: 6629)

**सम्पादकीय मण्डल**

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी
मुहम्मद हसन नदवी

**सह सम्पादक**

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी
मुहम्मद अमीन हसनी नदवी
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

**अनुवादक**

मुहम्मद सैफ़

E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

**मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी०.229001**
मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से
छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

## नामूस-ए-सहाबा (रज़ि0)

नतीजा-ए-फ़िक्र: वाली आसी मरहूम

दुनिया से यही रख़्ते सफ़र लेकर चले हैं
हम उल्फ़ते सिद्दीक़-ओ-उमर (रज़ि0) लेकर चले हैं
है पेशेनज़र सीरते उस्मान-ओ-अली (रज़ि0) भी
हो शाम न जिसकी वह सहर लेकर चले हैं

हम राह लिए सूर की जानिब शबे हिजरत
सिद्दीक़ (रज़ि0) को ख़ुद ख़ैरे बशर (स0) लेकर चले हैं
इन्साफ़ ने वो अद्ल कभी फिर नहीं देखा
आईने अदालत जो उमर (रज़ि0) लेकर चले हैं

वल्लाह! अजब शान है उस्मान-ए-ग़नी (रज़ि0) की
दुनिया से यह फ़िरदौस में घर ले के चले हैं
कहता है अली (रज़ि0) शेरे ख़ुदा जिनको ज़माना
वह नुसरते ख़ैबर की ख़बर लेकर चले हैं।

सीने से लगाई हुई नामूसे सहाबा (रज़ि0)
इस राह में नज़राना-ए-सर ले के चले हैं
कुछ हम पे है उनका करम ख़ास भी वाली
कुछ अपनी दुआओं में असर ले के चले हैं

## इस अंक में:

**नया साल और हम**..................................................3
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

**नबवी मदरसे के तरबियत याफ़्ता**.................................4
हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

**सहाबा किराम (रज़ि0) का इम्तियाज़ी पहलू**.......................6
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

**माह–ए–मुहर्रम और सुन्नी भाइयों से चन्द बातें**.......................8
मौलाना जाफ़र मसूद हसन नदवी

**तक़वा क्या है?**......................................................10
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

**ज़िहार के शरई एहकाम**.............................................12
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

**सहाबा की कुद्सी जमाअत और मुनाफ़िक़ीन**......................14
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

**मुहर्रमुल हराम और उसकी अहमियत व तक़ाज़े**....................16
मोहम्मद नजमुद्दीन नदवी

**मग़्रिबी तहज़ीब के असरात और इन्सानी तहज़ीब**..................18
मोहम्मद अमीन हसनी नदवी

**शहादत–ए–हुसैन का मक़सद**......................................20
मुहम्मद मुसअब नदवी बारह बन्कवी

सम्पादकीय

# नया साल और हम

**बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी**

मुहर्रम हर साल आता है मगर साल का यह आगाज़ जिन हालात में हो रहा है और उम्मत जिस कर्बो बला से गुज़र रही है, उस से कर्बला का ज़ख़्म हरा होता है। ज़ुल्म–ओ–सितम की दास्तानें तारीख़ को मजरूह कर रही हैं। लेकिन इधर दो–ढाई सालों में ज़ुल्म ओ बर्बरियत ने जिस तरह की दास्तान रक़्म की है वह आलमे इंसानियत की तारीख का एक इन्तहाई बदनुमा दाग़ है जो शायद कभी धोया न जा सके।

एक दौर था कि एक मज़लूम औरत सैंकड़ों हज़ारों मील दूर से "वा मुअ्तसिमाह" का नारा लगाती है और ख़लीफ़ा–ए–वक़्त उसकी मदद के लिए फ़ौज भेजता है। आज ज़ुल्म की आग लगी हुई है लेकिन पचासों मुसलमान मुल्कों में कोई मुअ्तसिम नहीं जो दादरसी कर सके।

एक मुल्क ने हमला किया, अश्कशोई के लिए यह भी बहुत कुछ था, काश कि इस हमले की बुनियाद उन मज़लूमों की दादरसी होती और सुलह की शराइत में कुछ उन मज़लूमों को भी हिस्सा दे दिया जाता। ज़ाहिर है सियासी हेरफेर से दीन व मज़हब का क्या वास्ता। ख़ास तौर पर जब बुनियादें ही अलग हों, जहाँ सहाबा पर सब्बो शित्म किया जाए, जहाँ अंबिया से बढ़ कर "इमामे मासूमीन" का दर्जा बताया जाए, जहाँ दीन की बुनियादों को मस्ख़ किया जाए, उसके बाद तवक़्क़ो ही क्या है?! यक़ीनन यह एक जुर्रत की बात महसूस की गई कि किसी ने जाबिर ओ ज़ालिम हुकूमत को आँखें दिखाईं, लेकिन ढाई साल की मुद्दत में यह जब हुआ कि वो खुद ज़द में आते नज़र आने लगे।

जो कुछ हुआ, हम उस पर भी दाद देते हैं, कहीं से किसी तौर पर उन मज़लूमों की अश्कशोई हुई, यह हम सब के लिए ख़ुशी का सामान है, लेकिन अगर कोई "उन" को इस्लामी क़ाएद व रहनुमा समझता है तो वह अपने ईमान का सौदा करता है। जिस हुकूमत के मुअस्सिस ने इसकी बुनियाद ही शिईयत पर रखी हो और जिसकी बुनियादी किताबों में इस्लामी हक़ाएक़ की बेखकुनी की गई हो और जहाँ आमाल की बुनियाद ही निफाक़ पर हो, "तक़य्या" जिस मज़हब में ऐन इबादत और तक़र्रुब का ज़रिया समझा जाता हो, अगर इस सुराख़ से कोई बार बार डसा जाए तो मोमिन कैसे हो सकता है: "لا يلدغ المؤمن من جحر مرتين"

इम्तिहान की घड़ी है। सब से बढ़ कर मसला हमारे ईमान का है। हालात कुछ भी हों, किसी वक़्त भी हम ईमान व अक़ीदा से सर्फ़–ए–नज़र नहीं कर सकते। हमें अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थामना है। तारीख़ में उरूज व ज़वाल की दास्तानें और इसके असबाब सब मौजूद हैं। हमें तारीख़ से भी सबक़ लेना है और सबसे बढ़ कर हमारे सामने उस्वा–ए–रसूलुल्लाह (स0अ0व0) है। आप (स0अ0व0) को कितने सख़्त हालात से गुज़रना पड़ा लेकिन एक लम्हे के लिए भी समझौता नहीं किया गया। अल्लाह की ताक़त सब से बढ़ कर है, जो कुछ होता है उसकी मस्लहत से वही वाक़िफ़ है। खुदा न ख़्वास्ता किसी लम्हे भी अगर मायूसी पैदा हो, अल्लाह की ज़ात पर एतिमाद में कमी हो तो सबसे बढ़ कर ख़तरे की बात है।

हर हाल में हमें अपने ईमान को मज़बूत करना है, अक़ाइदे इस्लाम की बुनियादों को इस्तवार रखना है। आमाल व अख़लाक़ में बुलंदी पैदा करनी है। अल्लाह ने इसी में हमारी सरबुलंदी का राज़ रखा है।

साल के आगाज़ पर काश कि हम नई हिम्मत–ओ–हौसला और नए ईमान व यक़ीन के साथ आगे बढ़ने का अज़्म करें और अपनी ज़िंदगी को उसी रौशनी से मुनव्वर करें जो रौशनी नबी आख़िरुज़्ज़माँ (स0अ0व0) और आपके सहाबा रज़िअल्लाहु अन्हुम से हमें मिली, आज तारीक दुनिया को उसी रौशनी की ज़रूरत है, काश कि हमारी ज़िंदगी दुनिया में रौशनी का ज़रिया बन जाए।

# नबवी मदरसे के तरबियत याफ़्ता

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

आप (स0अ0व0) के तैयार किए हुए अफ़राद में से एक–एक नुबूवत का शाहकार है और नौ–ए–इंसानी के शर्फ़–ओ–इफ़्तिख़ार का बाइस, इंसानियत के मुरक़्क़ा में बल्के इस पूरी काएनात में पैग़म्बरों को छोड़ कर इस से ज़्यादा हसीन ओ जमील, इस से ज़्यादा दिलकश ओ दिलआवेज़ तस्वीर नहीं मिलती जो इन की ज़िंदगी में नज़र आती है। इनका पुख़्ता यक़ीन, इनका गहरा इल्म, इनका सच्चा दिल, इनकी बेतकल्लुफ़ ज़िंदगी, इनकी बेनफ़्सी ओ खुदा तरसी, इनकी पाकबाज़ी ओ पाकीज़गी, इनकी शफ़क़त ओ राफ़त और इनकी शुजाअत–ओ–जलादत, इनका ज़ौक़–ए–इबादत और इनका शौक़–ए–शहादत, इनकी शहसवारी और इनकी शब ज़िंदा–दारी, इनकी सीम–ओ–ज़र से बेपर्वाही और इनकी दुनिया से बेरग़बती, इनका अद्ल और इनका हुस्न–ए–इंतिज़ाम, दुनिया की तारीख़ में अपनी नज़ीर नहीं रखता। नुबूवत का कारनामा ये है कि उस ने इंसानी अफ़राद तैयार किए, इन में से एक एक फ़र्द ऐसा था जो अगर तारीख़ शहादत पेश न करती और दुनिया उस की तस्दीक़ न करती तो एक शाइराना तख़्य्युल और एक फ़र्ज़ी अफ़साना मालूम होता, लेकिन वो तारीख़ की एक हक़ीक़त है, वो एक ऐसा इंसानी वजूद था जिस में नुबूवत के ऐजाज़ ने मुतज़ाद औसाफ़ ओ कमालात पैदा कर दिए थे।

ये फ़र्द जब तैयार हो गया तो ये बंदगी और ज़िंदगी के हर महाज़ पर कारामद, मुस्तैद और क़ीमती साबित हुआ और जो ख़िदमत उस के सुपुर्द की गई, उस ने अपनी अहलियत ओ सलाहियत और अपनी फ़र्ज़ शनासी और एहसास–ए–ज़िम्मेदारी और अपने ज़ौक़–ए–अमल और जज़्बा–ए–ख़िदमत का सुबूत दिया। उस को अगर फ़ैसला और सुलह सफ़ाई का काम सुपुर्द किया गया तो वो बेहतरीन क़ाज़ी और लायक़ तरीन तरजीह साबित हुआ, जिस ने तराज़ू के तौल फ़ैसला किया। वो अगर फ़ौजों का सिपहसालार और क़ाइद मुक़र्रर हुआ तो उस ने अपनी जंगी क़ाबिलियत, बेदार मग़ज़ी और शुजाअत और मर्हमत का सुबूत दिया। अगर फ़ौजों की कमान उस के हवाले कर दी गई तो एक मुस्तइद और कारगुज़ार और एक जरी और जांबाज़ सिपाही साबित हुआ। अगर उस को फ़ौज की क़यादत के मन्सब–ए–ऊला से माज़ूल कर दिया गया तो उस की पेशानी पर नाराज़गी की एक शिकन और उस की ज़बान पर शिकायत का एक हरफ़ नहीं आया और लोगों ने उस की मुस्तैदी और जोश ओ नशात में कोई फ़र्क़ महसूस नहीं किया। अगर वो नौकरों का आका और महकमा का अफ़्सर था तो एक फ़राख़ दिल और शफ़ीक़ आका और एक ख़ैरख़्वाह और मोहब्बत करने वाला बुज़ुर्ग ख़ानदान और अगर वो मज़दूर ओ अजीर था तो वो एक फ़र्ज़ शनास ओ मुस्तइद मज़दूर था, जिस को अपनी मज़दूरी के इज़ाफ़ा से ज़्यादा काम के इज़ाफ़ा की फ़िक्र थी। वो फ़र्द अगर फ़क़ीर था तो फ़क़ीर साबिर ओ क़ानेअ और अगर ग़नी था तो ग़नी शाकिर और मुहसिन, वो अगर आलिम था तो इल्म को आम करने और लोगों को खुदा का रास्ता बतलाने का हरीस और अपने इल्म की तक़सीम में फ़य्याज़ और अगर तालिब–ए–इल्म था तो इल्म–ए–सही के हुसूल का शाइक़ और उस को आला दर्जा की इबादत समझ कर उस की तल्ब में मुन्हमिक और उस के लिए बड़ी से बड़ी मेहनत और बड़ी से बड़ी ख़िदमत करने वाला था। और अगर वो किसी शहर का हाकिम था तो रातों को पहरा देने वाला और दिन को इंसाफ़ करने वाला था, ग़र्ज़ ये फ़र्द इंसानी मुआशरा के जिस मक़ाम और जिस महाज़ पर था, नगीना की तरह जड़ा हुआ था।

दुनिया की सब से ज़्यादा नाज़ुक और ख़तरनाक ज़िम्मेदारी (हुकूमत) जब उस के सुपुर्द हुई तो उस ने ज़ुह्द ओ फ़क्र और ईसार ओ क़ुर्बानी और जफ़ा–कशी ओ सादगी का ऐसा नमूना पेश किया कि दुनिया महवे हैरत रह गई और अभी तक उस के तहय्युर में कोई कमी

नहीं। आईए हमारे साथ ख़िलाफ़त–ए–राशिदा के उन वाक़िआत को पढ़ लीजिए। अह्द–ए–सिद्दीक़ी का मोअर्रिख़ लिखता है:

“एक रोज़ हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) की बीवी ने शीरीनी की फ़रमाइश की, जवाब दिया कि मेरे पास कुछ नहीं, उन्होंने कहा कि इजाज़त हो तो मैं खर्च रोज़मर्रा में से कुछ दाम बचा कर जमा कर लूँ, फ़रमायाः जमा करो, कुछ रोज़ में चंद पैसे जमा हो गए, तो हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) दिए कि शीरीनी लाओ, पैसे ले कर कहाः मालूम हुआ कि ये खर्च ज़रूरत से ज़्यादा हैं, लिहाज़ा बैतुलमाल का हक़ है, चुनांचे वो पैसे ख़ज़ाने में जमा कर दिए और उसी क़दर अपना वज़ीफ़ा कम कर दिया।” (सीरतुस्सिद्दीक़ : मौलाना हबीबुर्रहमान शेरवानी)

आप ने बहुत सी मम्लकतों के बादशाहों और बहुत सी जम्हूरियतों के सरबराहों के सरकारी दौरों की रुदाद सुनी होगी और उनके शाहाना तज़्क व इहतिशाम और कर्र ओ फ़र का तमाशा देखा होगा, सातवीं सदी मसीही के सबसे बड़े ताक़तवर फ़रमाँरवा हज़रत उमर (रज़ि०) के सरकारी दौरे (सफ़र–ए–शाम) की रुदाद मोअर्रिख़ की ज़बान से सुनिए, मौलाना शिबली अपनी शोहरा–ए–आफ़ाक़ तस्नीफ़ अल–फ़ारूक़ में 18 हिजरी के सफ़र–ए–बैतुल मुक़द्दस का हाल बयान करते हुए मुस्तनद अरबी तारीख़ों के हवाले से लिखते हैं:

“हज़रत उमर (रज़ि०) ने शाम का क़स्द किया, हज़रत अली को मदीना की हुकूमत दी और खुद ऐलह को रवाना हुए, यरफ़ा उनका गुलाम और बहुत से सहाबा साथ थे, ऐलह के क़रीब पहुँचे, किसी मस्लहत से अपनी सवारी गुलाम को दी और खुद उस के ऊँट पर सवार हुए, राह में जो लोग देखते थे पूछते थे कि अमीरुल मोमिनीन कहाँ हैं? फ़रमातेः तुम्हारे आगे, इसी हैसियत से ऐलह में आए और यहाँ दो एक रोज़ क़याम किया, ग़ज़ी का कुर्ता जो ज़ेब–ए–बदन था, कजावे की रगड़ खा कर पीछे से फट गया था, मरम्मत के लिए ऐलह के पादरी के हवाले किया, उस ने खुद अपने हाथ से पैवंद लगाए और उस के साथ एक नया कुर्ता तैयार करके पेश किया, हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपना कुर्ता पहन लिया और उस में पसीना खूब जज़्ब होता है।”

नुबूवत का ये कारनामा ज़माना–ए–बेअसत और पहली सदी हिजरी के साथ मख़सूस नहीं, आप की तालीमात ने और आप के सहाबा किराम ने ज़िंदगी के जो नमूने छोड़े थे, वो मुसलमानों की बाद की नस्लों और वसीअ आलम–ए–इस्लाम के मुख़्तलिफ़ गोशों में हर शोबा–ए–ज़िंदगी और सन्फ़–ए–कमाल में अज़ीम इंसान पैदा करते रहे जिन की इंसानी बुलंदी शक ओ शुब्हा और इख़्तिलाफ़ात से बालातर है। इस लाज़वाल “मदरसा–ए–नुबूवत” के फ़ुज़ला और तरबियत–याफ़्ता (जिन्होंने सिर्फ़ इसी मदरसा से इंसानियत, अख़लाक़, खुदाशनासी और इंसान दोस्ती का सबक़ लिया था) अपने अपने ज़माना की ज़ेब ओ ज़ीनत और इंसानियत के शरफ़ ओ इज़्ज़त का बाइस हैं। किसी मोअर्रिख़ और किसी बड़े से बड़े मुसन्निफ़ और मुहक़्क़िक़ की ये ताक़त नहीं कि उन लाखों अहल–ए–यक़ीन और अहल–ए–मअरिफ़त के नामों की सिर्फ़ फेहरिस्त भी पेश कर सके, जो इस तालीम के असर से मुख़्तलिफ़ ज़मानों और मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर पैदा होते रहे। फिर उनके मकारिम–ए–अख़लाक़, उनकी बुलंद इंसानियत, उनके रूहानी कमालात का इहाता तो किसी तरह मुमकिन नहीं। उनके हालात को (जो कुछ भी तारीख़ महफ़ूज़ कर सकी है) पढ़ कर अकल हैरान होती है कि ये ख़ाकी इंसान रूहानी तरक़्क़ी, नफ़्स की पाकीज़गी, हौसले की बुलंदी, इंसान की हमदर्दी, तबीयत की फ़याज़ी, इसार ओ क़ुर्बानी, दौलत–ए–दुनिया से बे–नियाज़ी, सलातीन–ए–वक़्त से बे–ख़ौफ़ी, खुदा शनासी ओ खुदा दानी और ग़ैबी हक़ीक़तों पर ईमान ओ यक़ीन के उन हदूद और बुलंदियों तक भी पहुँच सकता है? उनके यक़ीन ने लाखों इंसानों के दिलों को यक़ीन से भर दिया, उनके इश्क़ ने लाखों इंसानों के सीनों को इश्क़ की हरारत और सोज़ से गर्म और रोशन कर दिया, उनके अख़लाक़ ने खूँ–ख़्वार दुश्मनों को जानिसार और लाखों हैवान–सिफ़त इंसानों को हक़ीक़ी इंसान बना दिया, उनकी सोहबत और उनके फ़ैज़ ओ तासीर ने खुदा–तलबी, खुदा–तरसी और इंसान–दोस्ती का आम ज़ौक़ पैदा कर दिया।

हमारा मुल्क हिन्दुस्तान इस बारे में बड़ा खुशनसीब है कि वह अपने आग़ोश में कसरत से ऐसे मर्दाने खुदा लिए हुए है जिन्होंने अपने ज़माने में इन्सानियत को बुलन्द और इन्सान का नाम रोशन किया था।

# सहाबा किराम (रज़ि०) का इम्तियाज़ी पहलू

**हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह०)**

ख़ातमुन्नबीयीन हज़रत अक़दस (स0अ0व0) की सीरत और तबीयत के ताल्लुक़ से इस्लाम की असरपज़ीरी पर बहुत असर पड़ा जो बज़ाहिर साबिक़ अंबिया के हाँ नहीं नज़र आता। इस की वजह ये भी है कि इंसानी फ़ितरत में एक दूसरे से उन्स–ओ–ताल्लुक़ और बेताल्लुक़ी के मुख़्तलिफ़ ओ मुतफ़ावित दर्जात होते हैं, बाज़ वक़्त एक इंसान दूसरे इंसान से उनस महसूस करता है और बाज़ वक़्त नामानूसी के हालात ज़ाहिर होते हैं, इस नामानूसी और उनस के असबाब भी होते हैं, उनके असर से ये बात पेश आती है मसलनः बेटे को देख कर बाप को उन्स होता है, हालाँकि चेहरा बज़ाहिर उस जैसे दूसरे लड़के का भी होता है, लेकिन बाज़ वक़्त उस के चेहरे को देख कर तबीयत में ऐराज़ महसूस होता है, बाज़ वक़्त ये बात गहरी और ज़्यादा सख़्त होती है, आशिक़ ओ माशूक़ का मामला भी ऐसा ही है। इंसान की इंसान से मुलाक़ात पर और आपस के मेल–जोल में उनस और नापसंदीगी के हालात मिलते हैं, ये अल्लाह तआला का बनाया हुआ निज़ाम है और ये बेमक़सद व बेसबब नहीं है, हर चीज़ में हिकमत है, इस में भी हिकमत है और इसके असबाब भी अल्लाह तआला ने कुछ फ़ितरी और कुछ ग़ैर फ़ितरी रखे हैं, जिस का तजुर्बा हर शख़्स को होता रहता है, किसी से हम बहुत मानूस हो जाते हैं और किसी से मुलाक़ात पर तबीयत में गरानी मालूम होती है। अल्लाह तआला ने इंसानों का मिज़ाज और फ़ितरत बहुत बारिकी से बनाई है और इस में अजीब ओ ग़रीब ख़ासियतें रखीं हैं और हर इंसान को दूसरे इंसान से मुख़्तलिफ़ बनाया है। ये न किया होता तो दुनिया में किसी एक भी आँख के न मिलने की बात न होती और इसी तरह किसी के अंगूठे की छाप दूसरे के अंगूठे की छाप से नहीं मिलती, और दुनिया भर में आँख की छाप और अंगूठे की छाप ले कर ये समझ लिया जाता है कि ये अलग इंसान है और वो अलग इंसान है और दोनों के ख़ासियत अलग हैं। इसी तरह एक शख़्स के चेहरे के अंदाज़ दूसरे से मुख़्तलिफ़ होते हैं, उसको देखने वाला उस के मुताबिक़ असर भी लेता है, हज़रत रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का चाँद से भी अच्छा चेहरा ऐसा असर रखता था कि जिस ने आप को देखा, देखते ही वो आप पर क़ुर्बान हो गया और उस की क़ायापलट गई। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के तज़किरा में ऐसे बेशुमार वाक़िआत हैं जिन से आं हज़रत (स0अ0व0) की तासीर ख़ूब अच्छी तरह समझी जा सकती है।

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम का इम्तियाज़ी पहलू ये है कि अहकामे शरीअत जैसे जैसे नाज़िल होते थे, वो उनको उसी तरह इख़्तियार करते जाते थे और अगर किसी से ज़रा भी चूक होती तो उन्हें इस क़दर परेशानी होती कि जब तक उस की सफ़ाई न कर लेते, वो चौन से न बैठते थे।

अल्लाह तआला ने यूँ ही उनकी तारीफ़ नहीं की, अल्लाह तआला फ़रमाता हैः

"मुहम्मद (स0अ0व0) अल्लाह के रसूल हैं और जो लोग उनके साथ हैं वो इंकारीयों पर ज़ोरआवर हैं, आपस में मेहरबान हैं, आप उन्हें रुकू और सज्दे करते देखेंगे, अल्लाह का फ़ज़्ल और खुशनूदी चाहते हैं, उनकी अलामतें सज्दों के असर से उनके चेहरों पर नमायां हैं, उनकी यह मिसाल तौरात में है और इंजील में उनकी मिसाल यह है जैसे खेती हो जिस ने अंकुआ निकाला फिर उसे मज़बूत किया फिर वो मोटा हुआ फिर अपने तने पर खड़ा हो गया, खेती करने वालों को भाने लगा ताकि वो उनसे इंकार करने वालों को झल्ला दे, उन में से जो ईमान लाए और उन्होंने अच्छे काम किए,

उनसे अल्लाह ने मग़फ़िरत और अजर अज़ीम का वादा कर रखा है।” (सूरह फ़तेहः 29)

कुरआन मजीद में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम का यह आला मुक़ाम बताया गया है और जगह जगह उन में शामिल होने वालों का हाल भी बताया गया है जो ज़ाहिर में अपने को मुसलमान और सहाबा का हिस्सा बताते थे और इस तरह फ़ायदा में अपने को शरीक कर लेते थे मगर उनका तर्ज़–ए–अमल उनके खिलाफ़ था। उनके मुतअल्लिक़ “मुनाफ़िक़ून” और “ख़ादिऊन” की बात फ़रमाई गई है, ज़ाहिर में उनके साथ अख़्लाक़ बरता जाता था और आख़िरी दर्जे का अख़्लाक़ बरता गया, लेकिन यह आयत उतरी कि उन्हें अल्लाह तआला बख़्शेगा नहीं, यह वो लोग हैं जो बाद में भी रहे, अलबत्ता हुज़ूर (स0अ0व0) ने हज़रत हुज़ैफ़ा इब्ने यमान रज़ियल्लाहु अन्हु को निशानदेही फ़रमा दी थी। हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने जब लोगों को ज़िम्मेदारी दी तो उनसे दरियाफ़्त किया कि उन में से किसी को ज़िम्मेदारी तो नहीं मिल गई है? उन्होंने किसी का नाम लिए बग़ैर कहा कि एक ऐसे शख़्स को मिल गई है जो उन में से है, इस पर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपनी फ़िरासत से काम लेते हुए उन्हें मअज़ूल कर दिया।

जहाँ तक सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम के बाहमी इख़्तिलाफ़ का तअल्लुक़ है, इस से फ़िक्ह व मसाइल की बड़ी राहें खुलती हैं। आप (स0अ0व0) के बाद आपके सहाबा को नुबूवत व दावत का काम तफ़वीज़ किया गया और इस्लाम बतौर दीन के मुकम्मल हो गया, फिर आप (स0अ0व0) का सानिहा–ए–इर्तिहाल पेश आ गया और सहाबा इस मिशन को आगे बढ़ाने और दीन व शरीअत को नाफ़िज़ करने में लग गए। इस तरह हुज़ूर (स0अ0व0) की बअसत, बअसत–ए–मक़रूना थी, आपके साथ आपकी उम्मत मबअूस की गई। फ़रमाया गयाः

“तुम बेहतरीन उम्मत हो जो लोगों के लिए बरपा की गई है, तुम भलाई की तालीम देते हो और बुराई से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।” (आले इमरानः 10)

जहाँ तक इसका तअल्लुक़ है कि सहाबा के मुख़्तलिफ़ मरातिब व दर्जात हैं तो वो उनकी क़ुर्बानियों और सबक़त फ़िल इस्लाम, फ़ज़्ल व तक़द्दुम, ईमान व यक़ीन, इसार व अख़्लाक़ और आमाल के तफावुत से हैं, यह अल्लाह का मामला है, जिस के मुक़ाम को चाहे बुलंद करे, लब्बैक! किसी अदना सहाबी का भी मुक़ाबला बड़े से बड़े वली, इबादतगुज़ार, मुजाहिद, मुत्तकी और अज़ीम से अज़ीमतर ताबेई, यहाँ तक कि हुज़ूर (स0अ0व0) के ज़माना के उस शख़्स से भी नहीं किया जा सकता जिन्हें ज़माना तो मिला मगर रुईयत (दीदार) हासिल न हो सकी।

यहाँ यह बात भी मलहूज़ रहे कि अगर सभी एक ही मौक़े पर ईमान ले आते और एक ही हाल से गुज़रते या ग़लतियाँ न होतीं तो यह बात नुज़ूल–ए–कुरआन व शरीअत से टकराती, यहाँ तक कि इर्तिदाद और उस के बाद उस से वापसी पर माफ़ी या तअज़ीरात व हुदूद वाले मामलात पर उनकी तनफ़ीज़, यह सब दीनी हिकमत व मस्लहत का हिस्सा हैं, मगर वो सब अल्लाह के हाँ मक़बूल और दूसरों से बहुत ऊँचे मुक़ाम पर हैं। और जिन सहाबा को इक्तिदार मिला, उन्होंने इस फ़रीज़ा को कुरआन व सुन्नत के मुताबिक़ अंजाम देने की कोशिश की मगर वो इस सिलसिला में हमेशा ख़ाइफ़ रहे, हज़रत मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) का भी यही हाल था और उन्होंने अपने को कभी ख़लीफ़ा–ए–राशिद के तौर पर पेश नहीं किया, लब्बैक! उनके निज़ाम–ए–हुकूमत में सभी ने अम्न व इस्तिहकाम महसूस किया। (रज़ियल्लाहु अन्हुम व रज़ू अन्हु!)

सहाबा और अहले बैत दोनों का अपना अपना मुक़ाम है और इन हज़रात में आपस में बड़े एहतिराम व लिहाज़ की बातें नज़र आती हैं, दोनों की मोहब्बत अहले सुन्नत वल जमाअत ने जमा कीं और दोनों का जो हक़ है वो अदा किया। अलबत्ता जिन्होंने इस में एतिदाल का रास्ता छोड़ा, वो नासिबियत और रफ़ज़ व शिअय्यत की तरफ़ चले गए और जाद–ए–हक़ से हट गए। ऐसी बातें मुख़्तलिफ़ हालात के नतीजे में बार–बार सामने आती रहती हैं जिस के लिए “तवासी–बिल–हक़” का अमल ज़रूरी होता है।

# माह–ए–मुहर्रम और सुन्नी भाइयों से चन्द बातें

**मौलाना जाफ़र मसूद हसन नदवी**

बहुत से सादा लौह मुस्लिम मुहर्रमुल हराम के महीने को खानदान–ए–रिसालत के जिगर गोशों की शहादत की वजह से क़ाबिले अज़्मत समझते हैं। इसी लिए बाक़ायदा इस को मनाते भी हैं। इस्लाम में कोई महीना मनाया नहीं जाता, इस्लाम में कोई दिन मनाया नहीं जाता। यह मनाने का तसव्वुर इस्लाम में नहीं। इस्लाम की हर ईद और मुसलमानों की हर ईद नमाज़ है, चाहे वह ईदुल फित्र हो, चाहे वह ईदुल अज़्हा हो। यही है इबादत, यही है उस दिन को मनाना। तारीखी लिहाज़ से यह महीना और खास तौर पर इसकी दसवीं तारीख बड़ी अहमियत की हामिल है, इस तारीख के बारे में बहुत सी बातें कही जाती हैं, लेकिन वो बातें जैसा कि मौलाना तक़ी उस्मानी साहब फरमाते हैं कि उनका बहुत ज़्यादा एतबार नहीं है। अलबत्ता एक बात मुअ्तबर है और मुत्तफक अलैह है कि आशूरा के दिन मूसा (अलैहिस्सलाम) को फ़िरऔन से नजात मिली थी, फिरऔन ग़रक हुआ था। इस वाक़्ये की सेहत पर सबका इत्तेफ़ाक है। बाक़ी बातें जो बयान की जाती हैं कि आदम (अलैहिस्सलाम) की तौबा उसी दिन क़बूल हुई, नूह (अलैहिस्सलाम) की कश्ती उसी दिन जूदी पहाड़ पर टिकी, इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) को आग में उसी दिन डाला गया और आग उसी दिन गुलज़ार हो गई। ये वाक़्यात बयान किए जाते हैं लेकिन बहुत ज़्यादा इन वाक़्यात को मुअ्तबर नहीं कहा जा सकता। आप (स0अ0व0) जब मदीना मुनव्वरा पहुंचे, आपने वहां यहूदी क़बीलों को देखा कि वो आशूरा के दिन रोज़ा रखते हैं, आपने पूछा तो लोगों ने बताया कि इस दिन यह वाक़्या पेश आया था, इसलिए रोज़ा रखा जाता है, आपने फरमाया: मूसा के हक़दार उनसे ज़्यादा हम हैं।

बड़े अफ़सोस की बात है कि आज हमने इन सब हक़ीक़तों को बिल्कुल बदल कर रख दिया। आशूरा के दिन जो हरक़तें होती हैं वो खिलाफ़–ए–शरीअत हैं। आप खुद सोचिए! जो लोग सहाबा किराम के सिलसिले में बदज़बानी करें, बेहूदगी करें, क़ज़ब बयानी से काम लें, उन पर तोहमत लगाएं, इल्ज़ाम लगाएं, न जाने कैसे कैसे तजज़िए करें, यहां तक कि लखनऊ में रहने वाले जानते हैं कि पतंगों में ऐसे ऐसे जुम्ले लिख कर जिनमें हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की शान में गुस्ताख़ी की गई होती है, जिसमें अबूबक्र व उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) को गालियां लिख कर वो पतंगें उड़ाई जाती हैं और जब वो पतंगें कटती हैं और सुन्नियों के घरों में गिरती हैं तो सोचिए उनके जज़्बात का क्या आलम होता होगा लेकिन कौन पकड़ा जाएगा? पतंग कहां से आई? नहीं मालूम!

इसी तरह यहां तक हुआ है मुहर्रम में कि भैंस, गाय, बैल में शेख़ैन के ताल्लुक से नामुनासिब अल्फ़ाज़ लिख दिए और उनको छोड़ दिया, वो चौराहों पर घूम रहे हैं, गलियों में घूम रहे हैं, सड़कों पर घूम रहे हैं, सुन्नी तिलमिला रहा है, मगर क्या कर सकते हैं? जो फ़िर्क़ा और जो जमाअत इस हद तक कर रही है, उनके जलूस में शरीक होना, उनके ढोल–ताशे के साथ निकलने वाले जलूस में खड़ा होना, इस से बढ़कर बेहयाई और बग़ैरती की बात क्या हो सकती है?!

आप (स0अ0व0) का इरशाद है:

"من كثر سواد قوم فهو منهم۔"

"जिस ने शरीक होकर और खड़े होकर लोगों की भीड़ में इज़ाफ़ा किया और उनको ताक़त पहुंचाई तो वो उन्हीं में से है।"

अगर हम ऐसे प्रोग्रामों में जाते हैं, उनकी मजलिसों में शरीक होते हैं, उनके चहल्लुम या आशूरा के दिन के जलूसों को देखते हैं और वहां हमारी बहनें भीड़ लगाकर खड़ी होती हैं, वो यह नहीं जानतीं कि यह एक जलूस है,

एक तमाशा है या ग़म मनाया जा रहा है हज़रत हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की शहादत का क्या ग़म ऐसे ही मनाया जाता है और फिर जिस तरह मजलिसों में तज़्किरा होता है हज़रत ज़ैनब (रज़ियल्लाहु अन्हा) का, हज़रत सकीना (रज़ियल्लाहु अन्हा) का, जिस तरह मंजरकशी की जाती है उनके चीख पुकार की, दुपट्टे के सर से गिर जाने की, बाल खुलने की, सड़कों पर दौड़ने की, मैं तो यहां तक कहता हूं कि कोई भी शरीफ़ बाप, कोई इज़्ज़तदार बाप ये गवारा नहीं करेगा कि उसकी बेटी का तज़्किरा इस तरह सरेआम हो और आप (स0अ0व0) की नवासियां, परनवासियां, उनका तज़्किरा सरेआम इस तरह किया जा रहा है कि गोया उनको बेज़्ज़त किया जा रहा है। जिस तरह मंजरकशी की जाती है लगता है कि उनको एक तमाशा बनाकर पेश किया जा रहा है और हम सुन्नी मुसलमान पता नहीं हमारी ग़ैरत कहां चली जाती है? हमारी हया कहां खो जाती है और हम बड़े शौक से उसमें जाते हैं और शरीक होते हैं। हम यह नहीं सोचते कि यह क्या हो रहा है?

आप खुद सोचिए! 61 हिजरी में यह वाक़्या पेश आता है, मैं आपको तारीख़ बता रहा हूं, इस से आपको अंदाज़ा होगा कि यह तमाशा क्या है? इसके पीछे सियासत क्या है? इसके पीछे मंसूबा क्या है? इसके पीछे प्लान क्या है? 61 हिजरी में वाक़्या पेश आता है और यह भी ग़ौर करने की बात है कि सबसे पहला मातम खुद यज़ीद के घर में होता है। जब शहादत का वाक़्या पेश आता है, उसके बाद अहल–ए–बैत के घर की औरतों को जाना होता है यज़ीद के यहां, तो जब वो जाती हैं तो यज़ीद के घर की औरतें काले कपड़े पहनकर मातम करती हुई उनके सामने आती हैं और अपने झूठे ग़म का इज़हार उनके सामने करती हैं। तो मातम तो यज़ीद ने शुरू किया, यज़ीद के महल से शुरू हुआ। आज यज़ीद को गाली देने वाले, यज़ीद पर लानत भेजने वाले, उसी यज़ीद की नक़्क़ाली कर रहे हैं, उसी की नकल कर रहे हैं। 61 हिजरी का यह वाक़्या है, इन्हीं तारीखों में यज़ीद के यहां मातम हो रहा है, नौहा हो रहा है, रोया जा रहा है, बाल नोचे जा रहे हैं, काले कपड़े पहने जा रहे हैं, मातमी धुनें बज रही हैं, फिर क्या हो जाता है? फिर यह कौम क्यों सो जाती है? क्यों मातम नहीं करती? फिर यह क्यों ग़म नहीं मनाती? फिर यह जलूस क्यों नहीं निकलते? यह ताज़िया क्यों नहीं रखते? यह मजलिसें, मर्सिए क्यों नहीं सजती हैं?

उस के बाद 352 हिजरी में मातम होता है। 61 हिजरी से लेकर 352 हिजरी तक कोई मातम नहीं, कोई नौहा नहीं, सिवाए एक मातम के जो यज़ीद के घर में हुआ था। 352 हिजरी को मुअज़्ज़ुद्दौला नामी एक ईरानी शिया ऐलान करता है कि आशूरा के दिन शहर की दुकानें बंद हो जाएंगी, कोई खरीदो–फरोख़्त नहीं होगी, सब काले कपड़े पहनेंगे, औरतें बाल अपने खोल लेंगी, गिरेबान चाक कर लेंगी, कपड़े अपने फाड़ेंगी और जिस्म को पीटते हुए सीना कोबी करते हुए जलूस की शक्ल में निकलेंगी। 352 हिजरी में यह वाक़्या पेश आया है, मातम का ऐलान किया जा रहा है, सरकारी तौर पर मातम मनाया जा रहा है।

आप (स0अ0व0) का इरशाद है:

ليس منا من ضرب الخدود أو من لطم الخدود۔

“वो हम में से नहीं जो अपने चेहरे पर थप्पड़ मारे,

أو شق الجيوب या अपना गिरेबान चाक करे,

ودعا بدعوى الجاهلـــــية और जाहिलियत का नारा लगाए।”

यानी क़बीले के नाम पर लोगों को उभारे, ख़ानदान के नाम पर लोगों को उभारे वो हम में से नहीं है।

एक खास तबक़ा अगर ऐसा करता है तो करे, हम और आप क्यों ऐसा करते हैं? आप (स0अ0व0) की जमाअत से बाहर निकलने की कोशिश करते हैं, सोचते नहीं हैं कि आपके इरशादात क्या हैं? आपकी तालीमात क्या हैं? बस एक तमाशे की ख़ातिर निकल पड़ते हैं। अगर यह लोग जलूस निकालें, चाहे वो “अल्लाहु अकबर” का नारा लगाते हुए निकालें, चाहे वो “सुब्हान अल्लाह वलहम्दुलिल्लाह” के तराने पढ़ते हुए निकालें, कुरआन करीम की तिलावत करते हुए निकालें, इनके जलूसों में शिरकत करना निहायत दर्जे की बेहयाई है, निहायत दर्जे की बग़ैरती है, निहायत दर्जे की गुमराही है, ज़लालत है और रज़ालत है, निहायत दर्जे की जहालत है।

# तक़्वा क्या है?

**बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी**

### अख़्लाक़–ए–नबवी (स0अ0व0):

आप (स0अ0व0) के अख़्लाक़ को समझने के लिए फ़तहे मक्का का वाक़्या आख़िरी मिसाल है कि सारे क़ातिल जमा थे, सहाबा को क़त्ल करने वाले, जिन्होंने कई बार मदीना को बर्बाद करने की कोशिशें कीं और चढ़ाई की और आप (स0अ0व0) को शहीद करने की न जाने कैसी कैसी साज़िशें कीं, ये सारे के सारे वाक़्यात आप (स0अ0व0) के सामने थे, लेकिन इसके बावजूद आपने यक लख़्त उन्हें माफ़ कर दिया। तारीख़ में कोई फ़ातेह इसकी मिसाल पेश नहीं कर सकता, बल्कि अजीब बात है कि जब लश्कर मक्का में दाख़लि हो रहे थे तो उस मौक़े पर एक सहाबी की ज़बान से ये जुम्ला निकल गया:

"आज तो ख़ूंरेज़ी का दिन है।"

आप (स0अ0व0) को जब इसका इल्म हुआ तो आपने नापसंद फ़रमाया और ये कहा:

"आज का दिन तो माफ़ी का दिन है।"

आप (स0अ0व0) ने ये जो फ़रमाया, उस से इस्लामी मिज़ाज सामने आता है और हमें ये सबक़ मिलता है कि दुश्मनों को माफ़ करने की हमें तल्क़ीन की गई है। ये अलग बात है कि:

"ईमान वाला एक ही सुराख़ से दो मर्तबा नहीं डसा जाता।"

इसका मतलब ये नहीं है कि आप ऐसे लुक़्मा–ए–तर बन जाएं कि जो चाहे आपको निगलता चला जाए। इसका मतलब ये है कि आप अपनी पूरी इज़्ज़त व शौकत के साथ रहिए लेकिन इसके साथ आप ये भी बताइए कि इस्लामी अख़्लाक़ क्या हैं? कमज़ोरों की मदद कैसे की जाती है? दुश्मनों को कैसे माफ़ किया जाता है? अगर हम चाहते तो दुश्मनों को क़ाबू कर सकते थे और उन्हें सख़्त सज़ा दे सकते थे, लेकिन इसके बावजूद इस्लामी अख़्लाक़ क्या सिखाता है? अल्लाह के नबी (स0अ0व0) की ज़िंदगी का ये नमूना हमारे सामने है जिसे हमें इख़्तियार करने की ज़रूरत है।

### लोगों के साथ अच्छा बर्ताव:

आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

"अच्छे अख़लाक़ के साथ लोगों से पेश आओ।"

ग़ौर करने की बात है कि यहां यह नहीं कहा गया कि सिर्फ़ मोमिनों के साथ अच्छा बर्ताव करो, बल्कि तमाम इंसानों के साथ अच्छा बर्ताव करने की तालीम दी गई है। कोई बीमार है तो उसकी मदद करो, कोई मरीज़ है तो उसकी अयादत करो, कोई परेशान हाल है तो उसके काम आओ, कोई फाक़े से है तो उसको खाना खिला दो। आज के कुल हालात में लोग बहुत परेशान हैं। इन हालात में कोई ये सोचे कि फलाँ तो हमारा दुश्मन है, हम तो उसे एक वक़्त का खाना नहीं देंगे, याद रखिए! इस्लाम ये नहीं कहता। वो दुश्मन अपनी जगह पर है लेकिन वो आज ज़रूरतमंद है। आज उसकी ज़रूरत है कि आप उसके सामने इस्लामी अख़लाक़ का मज़ाहिरा करें और अल्लाह की रज़ा के लिए आप उसके काम आ जाएं। फिर अल्लाह तआला आपके उस वक़्त काम आएगा जब कोई काम आने वाला न होगा। ये भी मुमकिन है कि आपका ये तर्ज़–ए–अमल और अख़लाक़ उसके लिए हिदायत का ज़रिया बन जाए। ऐसे कितने वाक़यात हैं कि लोगों के हुस्न–ए–अख़लाक़ के नतीजे में कुछ लोगों की बदसुलूकी हिदायत का ज़रिया बन गई। ज़रूरत है कि हम बग़ैर किसी तफ़रीक़ के लोगों के साथ सुलूक करें और अच्छा बर्ताव करें।

हमारे अख़्लाक़ हर एक के लिए होना चाहिए, लेकिन हमें मोहतात रहने की भी ज़रूरत है। ऐसा न हो कि सामने वाला हम ही को नुक़सान पहुँचा दे। हालांकि हम उनके साथ अपना सुलूक अच्छा रखें। क्या बअईद

है कि अल्लाह तआला कल उनके दिल बदल दे। आदमी एक मर्तबा नहीं सोचता, दो मर्तबा नहीं सोचता, मगर जब वो बार–बार देखता है कि वो तुम्हारे साथ मुसलसल बदसुलूकी कर रहा है और ग़लत बर्ताव कर रहा है, मगर तुम उसके साथ अच्छा बर्ताव कर रहे हो, तो इससे कई बार आदमी का दिल बदल जाता है।

इस्लामी अख़्लाक़ को बरतना हमारी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है और ये इस्लाम की बुनियादों में शामिल है। इस लिए हमें अच्छे अख़्लाक़ बनाने और अपनी ज़िंदगी को बेहतर बनाने की ज़रूरत है।

आप (स0अ0व0) ने ये बात इरशाद फ़रमाई कि जहां कहीं भी हो, तक़्वा इख़्तियार करो, अल्लाह का लिहाज़ करो। किसी ग़लत काम में चाहे तुम्हें कितना ही फ़ायदा नज़र आता हो और तुम्हें कितना ही नुक़सान का अंदेशा हो, लेकिन तुम कभी भी ग़लत काम मत करना और कोई हराम चीज़ इख़्तियार मत करो।

ये भी फ़रमाया कि नेकियाँ करते रहो, नेकियाँ बुराइयों को मिटा देती हैं। आदमी को छोटी–मोटी नेकियों का ख़ास तौर से एहतिमाम करना चाहिए।

ये बात भी इरशाद फ़रमाई कि लोगों के साथ अच्छा बर्ताव करो और अच्छा सुलूक़ करो। ये ऐसी चीज़ है कि इससे अल्लाह की रज़ा भी हासिल होती है और इस्लाम का सही निज़ाम लोगों के सामने आता है, इस्लामी अख़लाक़ की सही तस्वीर सामने आती है।

इस सिलसिले में हज़रत मौलाना अली मियाँ नदवी रहमतुल्लाह अलैह का एक वाक़िआ बड़ा दिलचस्प है। ये वाक़्या मुझे ख़ुद गुजरात के एक बड़े आलिम–ए–दीन मौलाना अब्दुल्लाह कापोद्रवी (रहमतुल्लाह अलैह) ने तक़रीबन दो–तीन मर्तबा सुनाया। एक मर्तबा हज़रत मौलाना उन्हें लेकर हज़रत शैख़ुल हदीस मौलाना मुहम्मद ज़करिया कांधलवी (रहमतुल्लाह अलैह) की ख़िदमत में सहारनपुर जा रहे थे। ट्रेन की दो सीटों का रिज़र्वेशन था, नीचे की सीट हज़रत मौलाना की थी और ऊपर वाली मौलाना अब्दुल्लाह साहब की। सामने की दो सीटें हिंदुओं की थीं, उनमें एक नौजवान असेम्बली के मेम्बर थे और दूसरे साहब भी नौजवान थे। शाम के वक़्त एक बूढ़ी हिंदू ख़ातून आई जिसके तिलक लगा हुआ था। वो कहने लगी कि मेरी सीट ऊपर की है, मेरे सामने जो लोग हैं वो सीनियर सिटिज़न हैं, मैं उनसे रिक्वेस्ट नहीं कर सकती, अगर आप में से कोई सीट दे दे तो मेरा काम हो जाएगा। ये सुनकर वो दोनों हिंदू बैठे रहे और उनमें से कोई नहीं बोला। जब वो बेचारी मायूस होकर जाने लगी तो हज़रत मौलाना ने कहा कि ये मेरी नीचे की सीट है, जब तुम्हें सोना हो तो यहां आकर सो जाना। उसको तअज्जुब हुआ कि एक दाढ़ी वाला मुसलमान ये पेशकश कर रहा है, उस पर असर पड़ा। उस ज़माने में हज़रत को घुटने में गठिया की तकलीफ़ थी और आंखों से उस वक़्त नज़र भी नहीं आता था। 1977 में जब मौलाना अमेरिका गए और आंख का ऑपरेशन कराया तो अलहम्दुलिल्लाह बीनाई बहाल हुई। तो मौलाना अब्दुल्लाह साहब ने कहाः हज़रत! आपने बड़ा ग़ज़ब किया, आप ऊपर नहीं चढ़ सकते और आपने अपनी सीट उनको दे दी! इस पर हज़रत मौलाना ने अजीब बात कहीः "अब्दुल्लाह! इस्लाम का अख़्लाक़ी निज़ाम पेश करने का मौक़ा बार–बार नहीं मिलता, अगर कभी मौक़ा मिले तो हाथ से गवाना नहीं चाहिए, चाहे मशक्क़त ही उठानी पड़े।"

इस्लामी अख़्लाक़ असल चीज़ है। अगर ये हमारी ज़िंदगी में आ जाए तो हालात बदल जाएं। ये हमारी बदअख़लाक़ियाँ हैं जिन्हें लोग देखते हैं और उसके नतीजे में पूरी मुसलमान क़ौम बदनाम होती है। ये अल्लाह की रज़ा का भी ज़रिया है, लोगों में इस्लाम की सही तस्वीर पेश करने का भी ज़रिया है, और इसके ज़रिये से दावत के रास्ते भी खुलते हैं। क्या बईद है कि अल्लाह तआला इसी को हमारी हिफ़ाज़त का ज़रिया भी बना दे। आज के माहौल में मुसलमानों को ख़ास तौर से इस चीज़ पर तवज्जो देने की ज़्यादा ज़रूरत है। अगर इसकी फ़िक्र कर ली गई तो क्या बअईद है कि इंशा अल्लाह हालात कुछ के कुछ हो जाएं।

अल्लाह तआला हम सबको तौफ़ीक़ अता फ़रमाए, आमीन!

# ज़िहार के शरई एहकाम

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

## ज़िहार के मआनीः

ज़िहार का लफ़्ज़ "ज़हर" से बाबे मुफ़ाअलह का सीग़ा है। ज़हर के माने पीठ के होते हैं, तो ज़िहार के कई मानी हो सकते हैं, मसलनः "ज़ाहरत ज़हरक" के मानी हैंः "मैंने तुम्हारी पीठ उसकी पीठ के मुकाबले कर दी", और जब कहा जाएः "ज़ाहरा मराश्अतह" तो इसके मानी किए जा सकते हैं कि "उसने अपनी बीवी की पीठ को माँ की पीठ जैसी क़रार दिया", और शरीअत की इस्तिलाह में ज़िहार बीवी या उसके किसी जुज़ को उन औरतों में से किसी से तश्बीह देने को कहते हैं जो हमेशा के लिए उस पर हराम होती हैं, जैसे माँ, बेटी, बहन और सास वग़ैरह। (फ़तेहुल क़दीरः 4/85)

जाहिलियत में ज़िहार भी इला ही की तरह एक तरह की तलाक़ थी जिसमें शौहर ये चाहता था कि बीवी को मुअल्लक़ा बनाकर रखे, न तो खुद उसके लिए हलाल रहे, न किसी और से निकाह कर सके, तो इस्लाम ने इस ज़ुल्म को ख़त्म किया और कुरआन मजीद में इसके लिए अहकाम नाज़िल हुए, चुनांचे हज़रत खौला बिन्त मालिक फ़रमाती हैं कि मेरे शौहर हज़रत औस बिन सामित ने मुझसे ज़िहार कर लिया, तो मैं रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की ख़िदमत में आकर उनकी शिकायत करने लगी और रसूलुल्लाह (स0अ0व0) उनके बारे में मुझसे बहस करने लगे। आप फ़रमा रहे थेः अल्लाह का ख़ौफ़ करो, वो तुम्हारे चचाज़ाद हैं (तुम उन पर हराम हो चुकी हो, मैं कह रही थी कि उन्होंने तलाक़ के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल नहीं किए हैं, तो मैं आसमान की तरफ़ सर उठाकर अल्लाह से फ़रियाद करने लगी) मैं मुसलसल इसी में लगी रही, यहाँ तक कि कुरआन की ये आयात नाज़िल हुईंः (सूरह मुजादिलाः 1–4)

﴿قَدْ سَمِعَ اللّٰهُ قَوْلَ الَّتِیْ تُجَادِلُكَ فِیْ زَوْجِهَا...الخ﴾

"अल्लाह ने उस औरत की बात सुन ली जो आप से अपने शौहर के बारे में बहस कर रही थी और अल्लाह से फ़रियाद करती जाती थी, और अल्लाह तुम दोनों की गुफ़्तगू सुन रहा था। यक़ीनन अल्लाह सब सुनता है और देखता है। तुम में से जो लोग अपनी औरतों से ज़िहार कर लेते हैं, वो खुद उनकी माँए नहीं हो जातीं। उनकी माँए तो वही हैं जिन्होंने उनको जना है। और यक़ीनन वो लोग बड़ी नामुनासिब और झूठ बात कह जाते हैं और बेशक अल्लाह तआला बहुत माफ़ करने वाला, बख़्शने वाला है। और जो लोग अपनी औरतों को माँ कह बैठते हैं, फिर जो उन्होंने कहा उस से रुजू करना चाहते हैं, तो उनके ज़िम्मे दोनों (मियाँ–बीवी) के मिलने से पहले एक गर्दन आज़ाद करना है। तुम्हें इसकी नसीहत की जाती है और तुम जो करते हो अल्लाह उसकी पूरी ख़बर रखता है। फिर जो (गुलाम या बांदी) न पा सके तो उसके ज़िम्मे दोनों के मिलने से पहले ही मुसलसल दो महीने के रोज़े हैं। फिर जो इसकी भी ताक़त न रखता हो तो उसके ज़िम्मे साठ मिस्कीनों को खाना खिलाना है, ताकि तुम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान (को मजबूत) रखो। और ये अल्लाह की तय की हुई हदें हैं और इंकार करने वालों के लिए दर्दनाक अज़ाब है।" (अबू दाऊद, किताबुत तलाक़, बाब फी ज़िहारः 2216, इब्ने माजाः 2063, नसाईः 3460, अन आयशा (रज़ि0) फी मअना)

## ज़िहार तभी होगा जब बीवी को महरमात से तश्बीह देः

फिर ज़िहार उसी वक़्त माना जाएगा जब वो अपनी बीवी को माँ या महरमात में से किसी और से तश्बीह दे, फिर अगर उसने कहा कि "तू मेरी माँ की पीठ की तरह है" तो इस लफ़्ज़ को ख़्वाह किसी भी नियत से कहे या किसी नियत के बग़ैर कहे, इसको तलाक़ क़रार दिया

जाएगा, इस लिए कि ये लफ़्ज़ ज़िहार के लिए सरीह है और अगर कहा कि "मेरी माँ जैसी है", तो अगर उसकी मुराद ये हो कि माँ की तरह क़ाबिले एहतेराम हो तो यही माना जाएगा और अगर तलाक़ की नियत हो तो तलाक़ बाइन क़रार दिया जाएगा। (हिदायह मा अल–फतेहः 4/90789, शामीः 2/625)

और अगर हुरूफे तश्बीह में से किसी को इस्तेमाल किए बग़ैर कहा कि "तू मेरी माँ है", या कहा कि "बहन है", या कहा कि "बेटी है", तो इस से ज़िहार नहीं होगा, लेकिन बीवी के लिए इस तरह के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करना मकरूह है। (शामीः 2/626)

### ज़िहार का हुक्मः

अगर बीवी से ज़िहार कर लिया तो जब तक कफ़्फ़ारा अदा न कर दे, न तो उस से जिमा करना जाइज़ है, न तो बोसा लेना, न ही शहवत के साथ छूना जाइज़ है। उसके चेहरे वग़ैरह को देख सकता है, लेकिन शर्मगाह का देखना भी जाइज़ नहीं है।

(शामीः 2/625)

और अगर कफ़्फ़ारा अदा करने से पहले सुहबत कर ली या मज़कूरा चीज़ों में से कुछ कर लिया, तब भी एक ही कफ़्फ़ारा होगा और इस फेल की वजह से उसे गुनाह होगा, जिससे तौबा करना ज़रूरी है।

(हिन्दियाः 1/506)

### ज़िहार मोअक्कतः

ज़िहार मोअक्कत ये है कि किसी ख़ास वक़्त तक के लिए बीवी को माँ या महरमात में से किसी से तश्बीह दे दे, तो जितनी मुद्दत तक के लिए ज़िहार किया है, उसके गुज़रने के बाद बीवी हलाल हो जाएगी और उस से पहले कफ़्फ़ारा अदा किए बग़ैर कुरबत इख़्तियार करना जाइज़ नहीं होगा। (शामीः 2/626–627)

### ज़िहार का कफ़्फ़ाराः

ऊपर आयते करीमा में ज़िहार के कफ़्फ़ारा की पूरी तफ़सील आई है, यानी जो शख़्स अपनी बीवी से ज़िहार करे तो उसका कफ़्फ़ारा एक गुलाम या एक बांदी का आज़ाद करना है और अगर न पाए (जैसा कि आज के दौर में गुलाम बांदी का वजूद नहीं है तो ज़ाहिर है कि कफ़्फ़ारा की ये शक्ल मुमकिन नहीं है) तो मुसलसल दो महीने रोज़ा रखे और अगर बीमारी की शिद्दत के सबब रोज़े न रख सके तो साठ मिस्कीनों को दो वक़्त खाना खिलाए और ये सब बीवी से कुरबत इख़्तियार करने से पहले होना ज़रूरी है। (हिदायह मा अल–फतेहः 4/94)

अगर कोई शख़्स रोज़ों के ज़रिए ज़िहार का कफ़्फ़ारा अदा करना चाहता है तो उस पर लाज़िम है कि ऐसे महीनों में रोज़ा रखना शुरू करे कि दो महीनों के दरमियान रमज़ान, ईदुल फ़ित्र या अय्यामे तशरीक (१० ज़ुल्हिज्जा से १३ ज़ुल्हिज्जा) न आएं, अगर दो महीने पूरे होने से पहले मज़कूरा दिनों में से कोई दिन भी आ गया तो वो दो महीने मुसलसल रोज़ा रखने वाला नहीं माना जाएगा और उसे अज़ सरे नौ दो महीने के रोज़े रखने होंगे। इसी तरह अगर दरमियान में किसी उज़्र की वजह से या बग़ैर किसी उज़्र के एक भी रोज़ा छूट गया, या दरमियान में उसने उस औरत से वती कर ली जिस से ज़िहार किया था तो उसे अज़ सरे नौ साठ रोज़े रखने होंगे। (शामीः 2/631)

### कफ़्फ़ारा–ए–ज़िहार में 60 मिसकीनों को सदक़ा–ए–फ़ित्र के बक़दर ग़ल्ला देनाः

अगर कोई शख़्स कफ़्फ़ारा–ए–ज़िहार में साठ मिसकीनों को दो वक़्त खाना खिलाने के बजाय हर एक को एक सदक़ा–ए–फ़ित्र के बक़दर ग़ल्ला या उसकी क़ीमत दे दे, तब भी कफ़्फ़ारा सही हो जाएगा।

(शामीः 2/632–633)

इसी तरह अगर एक मिसकीन को साठ दिन दो वक़्त खाना खिला दे तब भी कफ़्फ़ारा सही होगा।

(ऐज़नः 633)

लेकिन अगर एक ही मिसकीन को साठ मिसकीनों का पूरा खाना दे दिया, या उसकी क़ीमत दे दी तो ये सिर्फ़ एक वक़्त के खाने की अदाईगी समझी जाएगी, और क़ीमत दी है तो सिर्फ़ एक मिसकीन को देना समझा जाएगा, या तो क़ीमत साठ मिसकीनों को दे या एक मिसकीन को साठ दिन तक देता रहे।

(शामीः 2/633)

# सहाबा की कुदसी जमाअत और मुनाफ़िक़ीन

मोहम्मद नज्मुद्दीन नववी

आंहज़रत (स0अ0व0) के ज़माना में मुनाफिक़ीन का एक गिरोह था, यह वो लोग थे जो ज़ाहिरी तौर पर ईमान का दावा करते थे, मगर बातिन में वो ईमान वाले नहीं थे। इस गिरोह में कुछ वो थे जो ऐतक़ादन मुनाफिक़ थे, अलबत्ता कुछ के अंदर अमलन निफ़ाक़ भी पाया जाता था जो दरअसल ऐतिकादी निफ़ाक़ से ही निकला हुआ था। लेकिन मुनाफ़िक़ की यह इस्तिलाह सहाबा की कुदसी जमाअत पर क़ायम नहीं की जा सकती, अगर कोई इनकी पाकीज़ा जमाअत को भी "मुनाफ़िक़ सहाबा" की इस्तिलाह से ताबीर करता है तो हक़ीक़त में यह एक गुमराह कुन और बातिल इस्तिलाह है जिसे तस्लीम करना मुमकिन नहीं। क़ुरआन करीम में सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के लिए हमेशा "मोमिनीन" का लफ़्ज़ आया है और "मुनाफिक़ीन" के लिए बाकायदा इसी लफ़्ज़ का मुस्तक़िल इस्तेमाल हुआ है। इसके अलावा अहादीस के ज़ख़ीरा में भी ग़ौर करने से पता चलता है कि आप (स0अ0व0) ने जहाँ कहीं भी "अस्हाबी" फ़रमाया तो आपने अपने सहाबा ही मुराद लिए हैं, कभी किसी मुनाफ़िक़ को सहाबी नहीं कहा गया, न उसको इस ज़ुम्रा में शामिल किया गया और न ही उसके साथ सहाबी जैसा मामला किया गया, बस ज़ाहिरी तौर पर उनके साथ रिआयत की जाती थी जो एक अलग बात है, ताहम किसी भी मुनाफ़िक़ को हरगिज़ हरगिज़ सहाबी नहीं कहा गया, अगर कोई शख़्स मुनाफ़िक़ है तो वह ईमान से खाली है और अगर कोई सहाबी है तो वह ईमान वाला है, इसलिए एक ही वक़्त दोनों अज़्दाद को जमा नहीं किया जा सकता। "मुनाफ़िक़ सहाबा" की इस्तिलाह ऐसे ही है जैसे कोई कहे कि "सफेद सियाही" या "स्याह सफेदी"।

इस दुनिया में किसी के एहतेराम व इकराम और किसी के मुक़ाम व मर्तबा को बयान करने के लिए जितने भी अलक़ाब व अल्फ़ाज़ वज़ा किए गए हैं, उन तमाम में सबसे मुअज़्ज़ज़ और मुकर्रम व मुहतर्म लफ़्ज़ "सहाबी" का है, अगर किसी को शरफ़े सहाबियत हासिल हो गया तो कोई दूसरा इस शरफ़ तक नहीं पहुंच सकता। ग़ौर की बात है कि अगर कोई इस इस्तिलाह को तस्लीम करता है तब तो फिर यह भी कहा जा सकता है कि "मुनाफ़िक़ ताबेईन", "मुनाफ़िक़ ताबे–ताबेईन", "मुनाफ़िक़ मुफ़स्सिरीन", "मुनाफ़िक़ मुहद्दिसीन", "मुनाफ़िक़ फ़ुक़हा" ग़र्ज़ कि फिर तो किसी के साथ भी यह इस्तिलाह जोड़ी जा सकती है।

आजकल यह बात कसरत से कही जाने लगी है कि मुनाफ़िक़ीन सहाबा के दरमियान घुसे हुए थे, यह नहीं जाना जा सकता था कि कौन मुनाफ़िक़ है और कौन सहाबी?! इस लिए सब ही को सहाबी माना और जाना जाता था, गोया उनके साथ भी सहाबियत वाला मामला किया जाता था। लेकिन यह बात बिल्कुल दुरुस्त नहीं है, हज़रात सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) खूब जानते थे कि कौन सही है और कौन ग़लत है? हत्ता कि अगर कोई शख़्स गहराई से क़ुरआन करीम का मुताला करे तो वह भी समझ सकता है कि मुनाफिक़ीन और सहाबा बिल्कुल अलग–अलग थे। क़ुरआन करीम में मुनाफिक़ीन की जो बुरी सिफ़ात बयान की गई हैं, उस से साफ़ पता चल जाता है कि उस समाज में मुनाफिक़ीन कौन थे?

मदीना के समाज में इन मुनाफिक़ीन के साथ ज़ाहिरी तौर पर रिआयत का मामला सहाबा के गिरोह में शामिल होने की वजह से नहीं था, बल्कि वो रिआयत इस लिए थी कि अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने उनके लिए एक मौक़ा रखा था, फिर यह बात भी इर्शाद हुई कि मुनाफिक़ों से मुतास्सिर होने की ज़रूरत नहीं, अल्लाह उन्हें मुब्तलाए अज़ाब करना चाहता है ताकि उनकी जानें इस हाल में जाएं कि वह काफ़िर हों।

मुनाफिक़ीन की हरकतें इस क़दर वाज़ेह हैं कि उन्हें अलग से पहचानना बिल्कुल भी मुश्किल नहीं।

आंहज़रत (स0अ0व0) जब मदीना मुनव्वरा तशरीफ़ लाए तो पहले ही दिन से उनकी कारस्तानियाँ शुरू हो गई थीं। उनका काम यह था कि वो काफ़िरों से पेंगें बढ़ाते थे, यहूदियों से मिले रहते थे, इसी लिए कुरआन करीम ने खुल कर कहा कि:

﴿بَشِّرِ الْمُنَافِقِينَ بِأَنَّ لَهُمْ عَذَاباً أَلِيماً﴾

"मुनाफिक़ीन को खुशख़बरी दे दीजिए कि यक़ीनन उनके लिए दर्दनाक अज़ाब है।"

सोचने की बात है कि अगर मुनाफ़िक़ीन के गिरोह का इल्म ही न हो तो फिर किस से कहा जाएगा? लेकिन मुनाफिक़ीन इस ग़लतफ़हमी में मुब्तला थे कि वो झूठी कसमें खा–खाकर अपने निफ़ाक़ को छुपा लेते हैं और उनकी हक़ीक़त से कोई वाकफ़ि नहीं है।

मुनाफिक़ीन का शेवा था कि हुज़ूर (स0अ0व0) के हर काम को उलट देते थे, तो क्या हुज़ूर (स0अ0व0) नहीं जानते थे कि मामला कौन उलट रहा है? मुनाफिक़ीन हुज़ूरे अकरम (स0अ0व0) के हर काम में रुकावट खड़ी करते थे। आंहज़रत (स0अ0व0) जिस तरह एक सालेह इंसानी समाज क़ायम करना चाहते थे, मुनाफ़िक़ीन ने उसी के मुक़ाबिल एक लग़्व और नजिस समाज बना रखा था:

﴿الْمُنَافِقُونَ وَالْمُنَافِقَاتُ بَعْضُهُمْ مِّنْ بَعْضٍ يَأْمُرُونَ بِالْمُنْكَرِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمَعْرُوفِ وَيَقْبِضُونَ أَيْدِيَهُمْ نَسُوا اللهَ فَنَسِيَهُمْ إِنَّ الْمُنَافِقِينَ هُمُ الْفَاسِقُونَ﴾

"मुनाफिक़ मर्द और मुनाफिक़ औरतें सब एक ही हैं, बुराई सिखाते हैं और भलाई से रोकते हैं और अपने हाथ बंद रखते हैं, उन्होंने अल्लाह को भुला दिया तो अल्लाह ने उन्हें भुला दिया, बेशक मुनाफिक़ीन ही फासिक़ हैं।" (तौबा: 67)

मालूम यह हुआ कि यह पूरा का पूरा एक जाना पहचाना टोली था और हर एक उस से वाकफ़ि था। लेकिन अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त की तरफ़ से उनके लिए एक मौक़ा था, जिस के मुताल्लिक़ आता है:

﴿فَإِنْ يَتُوبُوا يَكُ خَيْرًا لَّهُمْ﴾

"अगर वह तौबा कर लें तो उनके लिए बेहतर होगा।" (तौबा: 74)

गोया यह उनके लिए एक मौक़ा था जिस की बुनियाद पर उनके साथ रिआयत की जाती थी, वरना हर एक उनके कर्तूतों को खूब जानता था। अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त की मुनाफिक़ीन के मुताल्लिक़ यह वईद है:

﴿وَعَدَ اللهُ الْمُنَافِقِينَ وَالْمُنَافِقَاتِ وَالْكُفَّارَ نَارَ جَهَنَّمَ خَالِدِينَ فِيهَا هِيَ حَسْبُهُمْ وَلَعَنَهُمُ اللهُ وَلَهُمْ عَذَابٌ مُّقِيمٌ﴾

"अल्लाह ने मुनाफिक़ मर्दों और मुनाफिक़ औरतों और काफ़िरों के लिए जहन्नम की आग का वादा किया है, वो हमेशा उस में रहेंगे, वही उनके लिए काफ़ी है और उन पर अल्लाह की लानत है और उनके लिए हमेशा रहने वाला अज़ाब है।"

इस तबक़ा के मुक़ाबले में अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) की मेहनत व इख़लास से मदीना में जो मुबारक समाज क़ायम हुआ, उस के औसाफ़ यह हैं:

﴿وَالْمُؤْمِنُونَ وَالْمُؤْمِنَاتُ بَعْضُهُمْ أَوْلِيَاءُ بَعْضٍ يَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُقِيمُونَ الصَّلَاةَ وَيُؤْتُونَ الزَّكَاةَ وَيُطِيعُونَ اللهَ وَرَسُولَهُ أُولَئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللهُ إِنَّ اللهَ عَزِيزٌ حَكِيمٌ﴾

"और ईमान वाले मर्द और ईमान वाली औरतें एक दूसरे के मददगार हैं, वह भलाई का हुक्म देते हैं और बुराई से रोकते हैं और नमाज़ क़ायम करते हैं और ज़कात अदा करते हैं और अल्लाह और उसके रसूल की इताअत करते हैं, यही लोग हैं जिन पर अल्लाह की रहमत होने वाली है, बेशक अल्लाह ग़ालिब है, हिकमत वाला है।" (तौबा: 71)

कुरआन मजीद में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के इस पाकीज़ा समाज के लिए यह बशारत सुनाई गई है:

﴿وَعَدَ اللهُ الْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنَاتِ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِنْ تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا وَمَسَاكِنَ طَيِّبَةً فِي جَنَّاتِ عَدْنٍ وَرِضْوَانٌ مِّنَ اللهِ أَكْبَرُ ذَلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيمُ﴾

"अल्लाह तआला ने ईमान लाने वाले मर्दों और औरतों से ऐसी जन्नतों का वादा कर रखा है जिन के नीचे नहरें जारी होंगी, हमेशा के लिए उसमें रहेंगे, और हमेशा रहने वाली जन्नतों में अच्छे–अच्छे मकानों का (भी वादा है), और अल्लाह की रज़ा सबसे बढ़कर है, यही सबसे बड़ी कामयाबी है।"

हक़ीक़त यह है कि सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) बजाए खुद एक मेयार थे, हदीस में आता है कि जो उनसे मोहब्बत करे वह मोमिन और जो उनसे नफ़रत करे वह मुनाफिक़ है, तो समझना चाहिए कि फिर सहाबा मुनाफिक़ीन के उस गिरोह को क्यों कर नहीं पहचानते होंगे?

# मुहर्रमुल हराम
## और उसकी अहमियत व तकाज़े

**मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी**

हिलाले–मुहर्रम तुलूअ होने से नए इस्लामी हिजरी साल की इब्तिदा हो जाती है। इस महीने की अल्लाह के यहाँ बड़ी अज़्मत व क़द्र है। तारीख़ी रिवायतों की नज़र में देखा जाए तो इस महीने में कई अहम वाक़्यात रूनुमा हुए। इस महीने की अहमियत और उसकी फ़ज़ीलत पर मुतअद्दिद तारीखी रिवायतें और वो बयानात शाहिद हैं जो अहादीस व आसार में नक़्ल किए गए हैं।

इमाम मुस्लिम की नक़्ल की हुई एक हदीस पाक में फ़रमाया गया है कि: "रमज़ान के बाद बेहतरीन और अफ़ज़ल रोज़े मुहर्रमुल हराम के रोज़े हैं।" (सहीह मुस्लिम: 202) इसकी फ़ज़ीलत का अंदाज़ा इस रिवायत से भी आसानी से लगाया जा सकता है कि: "जो शख्स मुहर्रम के एक दिन का रोज़ा रखेगा, उसको एक दिन के बदले एक महीने के रोज़ों का अजर मिलेगा।" (ग़नियतुत–तालीबीन: 314) इस महीने में यौमे आशूरा को एक तरह का इम्तियाज़ इस तौर पर हासिल है कि अहदे जाहिलियत में भी इस दिन रोज़ा रखा जाता था। इमाम बुख़ारी ने अपनी सहीह (किताबुस्सयाम: 1794, 1898) में एक रिवायत नक़्ल की है कि: "क़ुरैश दौर–ए–जाहिलियत में यौमे आशूरा का रोज़ा रखते थे, नबी अक़्रम अलैहिस्सलाम ने भी रोज़ा रखा था, जब हिजरत करके मदीना में मुक़ीम हुए तो आपने खुद रोज़ा रखा और सहाबा को भी रोज़े का हुक्म दिया। लेकिन जब फ़र्ज़ियत–ए–रमज़ान का हुक्म नाज़िल हुआ तो यौमे आशूरा के रोज़े की फ़र्ज़ियत जाती रही, अब जो चाहे रोज़ा रखे और जो न रखे, उस पर कोई लाजिमी नहीं।" यही रिवायत मुस्लिम (रक़्म: 1125) में भी मौजूद है।

रमज़ान की फ़र्ज़ियत–ए–सियाम से पहले यौमे आशूरा का रोज़ा फ़र्ज़ था, फ़र्ज़ियत–ए–रमज़ान के बाद इसका लाज़िमी हुक्म बरक़रार नहीं रहा। अब यौमे आशूरा का रोज़ा इख़्तियारी है, लेकिन उसकी फ़ज़ीलत और बरकत व अहमियत में कोई कमी नहीं आई। बाइं वजह, नबी अक़्रम अलैहिस्सलाम का फ़रमान है: "यौमे आशूरा का रोज़ा ऐसा है कि अल्लाह तआला पर उसका यक़ीन रखता हूँ कि साल–ए–रफ़्ता के गुनाह माफ़ कर देगा।" (सहीह मुस्लिम: 2803) मुस्नद अहमद की एक मुअतबर रिवायत में हिदायत है कि: "यौमे आशूरा का तुम रोज़ा रखो, इसमें यहूद की मुख़ालिफ़त करो और इससे एक दिन पहले या बाद का रोज़ा रखो।" (मुस्नद अहमद: 2154) मुस्लिम की एक रिवायत से इसे ताक़्वियत मिलती है कि: "रसूले खुदा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यौमे आशूरा का रोज़ा रखा और रोज़े का हुक्म दिया, सहाबा ने अर्ज़ किया: ऐ अल्लाह के रसूल! यह वो दिन है जिसकी यहूद व नसारा तौक़ीर करते हैं, हजूर ने फ़रमाया: आइंदा साल नौवीं तारीख़ का भी रोज़ा रखेंगे, लेकिन आप अलैहिस्सलाम आइंदा साल की आमद से पहले इस फ़ानी दुनिया से रुख़सत हो गए।" (सहीह मुस्लिम: 2722)

ज़ख़ीरा–ए–अहादीस में यौमे आशूरा को अहले–ओ–आयाल पर खाने पीने में वुसअत और फ़राख़ी की फ़ज़ीलत पर रिवायत आई है: "यौमे आशूरा को जो शख्स अपने अहले–ओ–आयाल पर खाने–पीने में वुसअत करता है तो अल्लाह तआला उस पर पूरा साल वुसअत फरमाएगा।" (शुअबुल ईमान, अल बैहक़ी: 3513) तवस्सुअ अलल अयाल की रिवायत पर बाज़ मुहद्दीसिन ने ज़अफ़ का हुक्म लगाया है और बाज़ ने तहसीन फरमाई है, मगर मुख़्तलिफ़ सनदों से वारिद हुई है, इस लिए मज़्मूई तौर पर कुव्वत हासिल हुई है और फ़ज़ाइल के बाब में ऐसी रिवायत मुक़्तबर मानी जाती है, इस लिए इसका मुस्तहब होना बयान किया गया है। (औजजुल मसालिक: 3/48) इमाम बैहक़ी ने इसी वजह से लिखा है: "हाज़िहिल असानीद व इन्कानत ज़ईफ़ह, फहिया इज़ा ज़ुम्मा बाश्जुहा इला बाश्ज़िन उख़ज़ित कुव्वत" (सुनन अल बैहक़ी: 3/366, मक्तबा बेरूत)

मुहर्रमुल हराम का तसव्वुर अगर हमारे ज़ेहन में आता है तो अब इस हद तक कि इस में जिगरगोशा–ए–ज़हरा की मज़लूमाना और बेकसी के आलम में शहादत हुई, और इस्लामी तारीख़ के दीगर वाक़यात और इस महीने की हक़ीक़त व अज़्मत, मैदाने कर्बला में गुम हो कर रह गई, और माहे मुहर्रम का यौमे आशूरा मज़लूमियत और बेकसी का उनवान व रम्ज़ बन कर रह गया।

उधर मुहर्रम का चाँद तुलूअ हुआ, इधर ग़म व नौहा का

मंज़र दिखाई देने लगा। लोग मातमी लिबास में रक़्साँ नज़र आने लगे, कहीं नौहाख़्वानी है, कहीं मजालिस–ए–अज़ा। कहीं बिदअत व ख़ुराफ़ात का घेरे घेराव है और कहीं ग़ैर संजीदा माशरों में आतिशीं लहू व लअब। अक्सर व बेश्तर तबक़ों में अक्ल व शर्ब में वो ग़ुलू व एहतिमाम और जानी व माली थकन कि बस अल्लाह की पनाह!

तअज़िया व सीनाकोबी करना और सवारी से मन्नतें मानना नाजायज़ है, क्यों कि तअज़िया–दारी व साज़ी ईमान व दीन के ख़िलाफ़ है।अऔर क़ुरआन पाक की आयतः "अतअबुदूना मा तनहितून" से सख़्त हकीमाना तंबीह की गई है, क्योंकि यह अपने हाथों तराशे हुए चीज़ों की परस्तिश है। तअज़िया के साथ जो कुछ किया जाता है, ये सब रूह–ए–ईमान और तालीम–ए–इस्लाम के एतिबार से नाजायज़ हैं। इमाम इब्न हजर मक्की की "सवाइक" में सराहत हैः "व इय्याहु सुम्मा इय्याहु अं युश्गिलहू बिबिदअिर राफ़िज़ह मिनन नद्बि विन्नियाहति वल हुज़्नि इज़ लैसा ज़ालिका मिन अख़लाक़िल मोमिनीन, व इल्ला लाका यौमे वफ़ातिहि (स0अ0व0) औला बिज़ालिक व अह़री।" (अस्सवाइक़ुल मुहर्रिक़हः 2/534) (ख़बरदार! राफ़िज़ियों की बिदअतों में मुबतिला न होना जैसे मरसिया ख्वानी, मातम और ग़म व अंदोह वग़ैरह, क्योंकि ये मोमिनीन के शायान नहीं। अगर ऐसा करना जायज़ होता तो यौमे विसाल–ए–रसूल (स0अ0व0) ज़्यादा हक़दार होता) इसी तरह अहले सुन्नत के यहाँ माह–ए–मुहर्रम में काला लिबास इस्तेमाल करना ममनूअ है, क्योंकि यह सोग की अलामत है। (अहकामे शरीअतरू 1/90) और शियों की फ़िक़्ह की मुस्तनद किताबों में भी सख़्त तंबीह की गई है। (अल–काफ़ीः 453, मन ला यहज़ुरहुल फ़क़ीहः 163) यही वजह है कि फ़ुक़हाए उम्मत के यहाँ तसरीहात मिलती हैं किः "माहे मुहर्रम को मातम और सोग का महीना क़रार देना जायज़ नहीं, हदीस में है कि औरतों को उनके ख़्वेश व अकारिब की वफ़ात पर तीन दिन मातम और सोग की इजाज़त है और अपने शौहर की वफ़ात पर चार महीने दस दिन सोग मनाना ज़रूरी है। दूसरा, किसी की वफ़ात पर तीन दिन से ज़्यादा सोग मनाना जायज़ नहीं हराम है।" (फतावा रहीमियाः 2/115, कराची) फ़क़ीह व मुहद्दिस शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी का फ़तवा हैः "तअज़िया–दारी दर अशरह मुहर्रम व साख़्तन ज़राइह दर सूरत क़ुबूर वग़ैरह दुरुस्त नाइस्त।" (फतावा अज़ीज़ीः 1/68) बाइं हमा, इमाम अबूबक्र बुरहानुद्दीन फ़रग़ानी ने उसूली बात बताई है किः "बिला रैब तमाम लह्व व लअब के काम हराम हैं, यहाँ तक कि साज़ों (म्यूज़िक) के साथ गाना भी।" (अल–हिदायहः 4/80)

अहले सुन्नत के यहाँ माह–ए–मुहर्रम में आम तौर पर ये समझ लिया गया है कि ख़ुशी व शादी की तक़रीबात दुरुस्त और जायज़ नहीं, और ये दिन मनहूस और सोग के हैं, ऐसा अक़ीदा और तसव्वुर रखना ग़लत है। "माहे मुहर्रम में शादी वग़ैरह को नाजायज़ कहना सख़्त गुनाह और अहले सुन्नत के अक़ीदे के ख़िलाफ़ है। इस्लाम ने इन चीज़ों को हलाल और जायज़ क़रार दिया है, और जो एतिक़ादन और अमलन इनको नाजायज़ या हराम समझे, तो उसमें ईमान का ख़तरा है। मुसलमानों को रावाफ़िज़ (शीयों) से पूरी एहतियात बरतनी चाहिए, उनकी रसूम में शिरकत हराम है।" (फतावा रहीमियाः 3/191) अल्लाह तआला हमारे ईमान की हिफ़ाज़त फरमाए और हमें तमाम रसूम व बिदअत से महफ़ूज़ फरमाए, क्यों कि मामूली सी नादानी ईमान के ख़तरे का सबब न बन जाए और रसूम व बिदअतें गुमराह कुन चीज़ें हैं और ये जहन्नम में ले जाने वाली हैं।

इन तमाम हक़ीक़तों के साथ याद रहे कि जिगरगोशा–ए–ज़हरा, शाने रहमतुल लिल आलमीन (स0अ0व0) का अज़ीम तरीन मज़हर हैं। नुबूवत पर ईमान और रिसालत मआब की मोहब्बत व इक़रार का तक़ाज़ा है कि "सब्ते महबूबे इलाही" व "शहीद–ए–कर्बला" की मोहब्बत हर ईमान वाले के दिल में मौजज़न हो। दायरा–ए–शरीअत में रहकर, मातम, अलम, तअज़िया–दारी और तबर्राबाज़ी मोहब्बत का मज़हर नहीं कृ दुश्मनी की शक्ल और अहकामे शरीअत की नाफ़रमानी है। अस्ल शै मोहब्बत व इताअत–ए–इलाही है, अल्लाह की मोहब्बत तक पहुँचने की एक ही हक़ीक़ी राह है, वो मरकज़ इर्फ़ान–ए–मोहब्बत और चश्मा–ए–फ़ैज़–ए–मोहब्बत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की अज़ीम तरीन ज़ात है। हुज़ूर (स0अ0व0) की इताअत और हक़ीक़ी मोहब्बत ही वो मरकज़ी नुक़्ता है जिस पर अब तमाम आलम–ए–इंसान की सलाह, फ़लाह और निजात मुनहसर है। और शरीअत वो निशान–ए–राह और कसौटी व मयार है, जो अपने ईमान वालों को उस मयार पर खरा उतरने की दावत बल्के हुक्म देती है, ताकि आलम–ए–इंसान उसके साए में नूर व हिदायत की राह पर महकम व मुस्तहकम रहे। मुहर्रमुल हराम का नौ–ए–इंसान को यही पेग़ाम है कि ज़ुल्म व इस्तिब्दाद के इंतिहाई उरूज के दौर में आईना–ए–हक़ दिखाना और हक़ व इस्तेक़ामत की राह पर चलकर मआरका–ए–हक़ व बातिल में जान क़ुर्बान करना फ़ित्रत का तक़ाज़ा और अईन–ए–इस्लाम है।

# मग़रिबी तहज़ीब के असरात और इन्सानी तहज़ीब

मोहम्मद अमीन हसनी नदवी

यूरोप में एक शख़्स गुज़रा है जिसको मुफ़क्किर कहा जाता है, क्योंकि उसने एक फ़िक्र दी है ग़लत ही सही, एक सोच दी है, वहशियाना ही सही, नाम इस मुफ़क्किर का है: निकोलो मैकियावेली (Niccolò Machiavelli)। इंसानों के बारे में उसकी क्या राय है? ज़िंदगी की उसके यहाँ क्या क़ीमत है? इसको अगर समझना है तो उसके इस जुमले पर ग़ौर करना होगा, वो कहता है: "मक़सद के हुसूल के लिए अगर किसी का ख़ून बहाना पड़े तो इस से दरगुज़र नहीं करना चाहिए और अपने मक़सद को हासिल करने के लिए किसी भी हद तक जाना पड़े तो जाना चाहिए।"

इस उसूल पर मगरीबी तहज़ीब की बुनियाद है और इसी रास्ते पर आज भी वो गामज़न है। जबकि इस्लामी तहज़ीब की बुनियाद इस उसूल पर है कि मक़सद भी नेक हो और मक़सद के हुसूल का तरीक़ा भी दुरुस्त हो। आप अपने को फ़ायदा पहुँचाइए लेकिन दूसरे को नुक़सान पहुँचाकर नहीं। आप दूसरे के लिए वही पसंद करें जो आप अपने लिए पसंद करते हैं।

साबिक़ अमरीकी वज़ीर–ए–ख़ारजा हेनरी किसिंजर (Henry Kissinger) का यह जुम्ला बहुत मशहूर है कि "हम किसी के दोस्त नहीं, हम सिर्फ़ अपना मफ़ाद देखते हैं और उसको पूरा करना चाहते हैं, चाहे इसके लिए जो भी तरीक़ा इस्तेमाल करना पड़े।" एक कहावत है जिससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि मौजूदा दौर की इस मोहज़्ज़ब दुनिया का मिज़ाज क्या है? कहावत है: "न अब्बा, न भैया, सबसे बड़ा रुपैया।" कुछ हिंदू भाइयों की दुकानों में ये इबारत दीवार पर लिखी नज़र आती है, मतलब इसका ये होता है कि कारोबार में रिश्तेदारी, दोस्ती, इंसानियत, शराफ़त और हमदर्दी का कोई गुज़र नहीं। एक कहावत और है, वो भी इस दौर के मिज़ाज की अक्कासी करती है। कौन सा दौर? मगरीबी निज़ाम–ए–तालीम का दौर, मग़रिब के तसल्लुत का दौर, मगरीबी अफ़कार व नज़रियात के रिवाज का दौर, मगरीबी मुफक्किरों से मरऊबियत का दौर, मगरीबी तहज़ीब की हुक्मरानी का दौर। वो कहावत है: "अगर ज़रूरत हो तो गधे को भी बाप बना लो।" कहाँ इंसान, कहाँ गधा? न शक्ल, न अक़्ल, न आवाज़, फिर भी इंसान उसको बाप बनाने को तैयार? क्या इंसानियत की इससे बढ़कर कोई तौहीन हो सकती है?

एक फ़लसफ़ी और गुज़रा है, डार्विन के नाम से वो जाना जाता है। वो अपना सिलसिला–ए–नसब ही बंदर तक पहुंचाता है। ख़ैर चलिए, गधे से बंदर तो बेहतर है उचक सकता है, कूद सकता है, मिनटों में कहीं से कहीं पहुंच सकता है। गधा बेचारा तो बस एक ही जगह गर्दन झुकाए खड़ा नज़र आता है। बहरहाल इन सब बातों से अंदाज़ा यही होता है कि इस दौर में सबसे गया गुज़रा इंसान ही है, उसकी सबसे ज़्यादा गत बन रही है और उसके अपने ही हाथों बन रही है। इंसानी हुकूक की बातें तो बहुत हैं, लेकिन वो सब एक धोखा हैं। एक अमरीकी साइंटिस्ट डॉक्टर जी.आर. अल्बेरीली ने अपनी रिपोर्ट में यह साबित किया है कि: आजकल जो मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बीमारियाँ पैदा हो रही हैं, ये सब इन्हीं एटमी तजुर्बों का नतीजा हैं। अमेरिका ने ऐसा केमिकल तैयार किया है जिससे ज़लज़ला की कैफ़ियत दुनिया में पैदा की जा सकती है, जिससे ज़लज़ला और हादिसात आएँगे। रिपोर्ट में ये भी कहा गया है कि: एड्स, कैंसर, हार्ट अटैक, सांस की तकलीफ़, स्वाइन फ़्लू, बर्ड फ़्लू, डेंगू बुखार, चिकनगुनिया और इस तरह की बेशुमार बीमारियाँ इन्हीं एटमी तजुर्बों की वजह से हो रही हैं और इसका मक़सद यूरोप का सिर्फ़ अपनी बालादस्ती क़ायम करना है।

मगरीबी तहज़ीब ये बताती है कि इंसान की क़ीमत जानवरों से बदतर है, जिसको किसी भी वक़्त मसला जा सकता है। उनके ज़ेहन में यह बात है कि हुकूमत करना हमारा काम है, बाक़ी लोगों का काम गुलामी करना। गुज़िश्ता जंग–ए–अज़ीम में जापान पर जो बम फेंका गया, उस से आज तक इंसानी जानों को नुक़सान पहुंच रहा है और आज भी इंसानी हलाकतों का सिलसिला जारी है।

अगर ये बात कही जाए कि मगरीबी तहज़ीब की

उठान ही जुर्म, तशद्दुद, ख़ूनरेज़ी और सफ़ाकी पर है, तो कोई ग़लत बात नहीं होगी। ये तहज़ीब अपने मक़ासिद की तकमील के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। अगर इस तहज़ीब से इंसानी समाज को बचाना है तो वो इस्लामी सिफ़ात पैदा करनी होंगी जो क़रन–ए–अव्वल में सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने आप (स0अ0व0) की सोहबत में रह कर पेश की थीं। इस्लामी इक़दार, इस्लामी अख़लाक़ और इस्लामी निज़ाम–ए–ज़िंदगी को पेश करना होगा। अगर इंसान ये चाहता है कि उसका ख़ानदानी निज़ाम बाक़ी रहे तो उसको इस्लामी निज़ाम अपनाना होगा।

1914 में पहली जंग–ए–अज़ीम हुई जो चार साल तक चली, 90 लाख फ़ौजी और 70 लाख आम शहरी इस जंग में मारे गए और 50 लाख आम शहरी भूक और बदतर हालात का शिकार हुए और अपनी जान से हाथ धो बैठे।

फ्रांस में जम्हूरी इन्क़िलाब बरपा हुआ और जब फ़र्दन फ़र्दन इंसानों को क़त्ल करना मुमकिन न हुआ तो गिलो टीन (Guillotine) ईजाद करना पड़ा, जो एक ही वक़्त बीसियों इंसानों के सरों को नारियलों की तरह उड़ा देती थी। इस जम्हूरी इनक़लाब ने मुअर्रिख़ीन के अंदाज़े के मुताबिक़ 26 लाख इंसानों को गिलोटीन से भेंट चढ़ा दिया।

रूस में इस्तराक़ी (साम्यवादी) इनक़लाब ने एक करोड़ से ज़्यादा इंसानों को क़त्ल व ग़ारतगिरी और बर्फ़ानी क़ैदख़ानों के हवाले कर दिया। मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रहिमहुल्लाह) ने इस हक़ीक़त से पर्दा उठाया, वो लिखते हैं: "ब्रिटानिया के फ़ौजी अफ़सरों की निगाह में अपने सिपाहियों की वक़अत बस महज़ शग़िज़ा–ए–तूपश की थी, जंगों में अंग्रेज़ अफ़सर अपनी तक़रीरों में ये बातें करते थे अपनी इंसानियत और शराफ़त को भुला दो, दिलों को पत्थर बना लो, मौत व ज़िंदगी की तरफ़ से बहरे बन जाओ, ये जंग है, जंग!"

हिंदुस्तानी मुअर्रिख़ प्रोफेसर अमरीश मिश्रा अपनी ताहक़ीक़ी किताब में तारीखी शवाहिद, दस्तावेज़ात और सरकारी आंकड़ों की बुनियाद पर लिखते हैं कि:

"अंग्रेज़ों ने 1857 में 10 मिलियन (1 करोड़) हिंदुस्तानियों को मौत के घाट उतार दिया, और ये सब के सब बेगुनाह थे। इनका क़सूर सिर्फ़ ये था कि उन्होंने मुल्क की आज़ादी की ख़ातिर ब्रितानी सामराज़ के ज़ुल्म और तशद्दुद के ख़िलाफ़ तहरीक शुरू की थी। लेकिन सफ़ाक़ अंग्रेज़ों ने अपने इक़्तिदार की हिफ़ाज़त और बक़ा की ख़ातिर बेगुनाह हिंदुस्तानियों (मुस्लिम और हिंदू) को बेमेहरमी से क़त्ल कर डाला, और ये ख़ूनी सिलसिला 1857 से 1867 तक जारी रहा।

इंफ़िरादी तौर पर जो ज़ुल्म व सितम कलीसा ने ढाया था वह भी अपनी मिसाल आप है। ज़िंदा इंसानों को आग में झोंक दिया जाता था, और नीम जली हालत में निकाल कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता। मर्दों और औरतों को बाँधकर चिमनी में लटका दिया जाता और नीचे आग लगा दी जाती, ताकि वो आग में तप कर और धुएं में घुट कर तड़प तड़प कर मर जाएँ। पूरे जिस्म में सुइयाँ चुभोई जातीं, ज़ंजीर में बाँध कर हल्की आग में भूना जाता, ज़मीन पर लिटाकर कुल्हाड़ी या लोहे से उसकी कमर तोड़ी जाती, फिर उसे तड़पने के लिए छोड़ दिया जाता ताकि वो मर जाए।

इसके बरख़िलाफ़ नबी करीम (स0अ0व0) ने जंग के मौक़े पर जो उसूल व हिदायात अता फ़रमाईं, वो भी मुलाहिज़ा फरमाएं:

"नबी करीम (स0अ0व0) का क़ायदा था कि आप (स0अ0व0) औरतों, बच्चों और बूढ़ों को क़त्ल करने से मना फ़रमाते थे। जब सर यह भेजते तो उन लोगों को ताकीद कर देते कि मुनकिरीने ख़ुदा को क़त्ल करना हो तो मिस्ला न करो यानी उनके जिस्म के अज़ा को न बिगाड़ो। कुफ़्फ़ार से जब कुछ मुआहदा करो तो बेवफ़ाई न करो। औरतों, बच्चों और बूढ़ों को क़त्ल न करो। आप (स0अ0व0) ये भी हुक्म देते कि जिस बस्ती या क़बीले से अज़ान की आवाज़ सुनाई दे या इस्लाम की कोई अलामत मालूम हो, वहाँ हमला न किया जाए। और जो शख़्स कलिमा पढ़ लेता गो उसने तलवार के ख़ौफ़ ही से पढ़ा हो उसको क़त्ल करने से मना फ़रमाते थे। नबी (स0अ0व0) ने ग़ज़वा–ए–हुनैन में अपने असहाब व रुफ़क़ा को हुक्म दिया कि किसी बच्चे, औरत, मर्द या ग़ुलाम जो कामकाज के लिए हो हाथ न उठाया जाए। आपने एक औरत के क़त्ल पर जो हुनैन में मारी गई अफ़सोस का इज़हार किया। नबी (स0अ0व0) की इस आला तरीन तालीम व तर्बियत ही का असर था कि ख़ुलफ़ा–ए–राशिदीन के अहद में, अगरचे इराक व शाम, मिस्र व अरब और ईरान व ख़ुरासान के सैकड़ों शहर फ़तह किए गए, मगर किसी जगह भी हमलावरों, जंग–आज़माओं या रिआया के साथ इस तरह की सख़्ती और ज़्यादती का बर्ताव नहीं मिलता जो उस ज़माने की जंगों में राएज था। मग़लूब दुश्मन से तावान–ए–जंग लेने का भी कहीं इंदराज नहीं मिलता।

# शहादत-ए-हुसैन का मक़सद

मुहम्मद मुसअब नदवी बाराबंकवी

क़ुर्बानी का मुबारक महीना गुज़र गया और मुहर्रमुल हराम का मुबारक शहादत वाला महीना शुरू हो गया, जिसका हक़ यह था कि आप नवासा–ए–रसूल, अली–ए–मुर्तज़ा के नूरे नज़र, बिन्ते रसूल के लख़्ते जिगर हज़रत हुसैन (रज़ि0) की बेनज़ीर शहादत को याद करते, उसको अपने दिल में और अपने ख़ून के हर एक क़तरे में जगह देते, आपके जिस्म का रोयां–रोयां फ़िदाइयत व शहादत के जज़्बे से सरशार हो जाता।

मगर यह क्या हुआ! मुहर्रम का महीना शुरू होते ही हज़रत हुसैन के नाना के उम्मती, हुसैन की मुहब्बत का दावा करने वाले, हुसैन के दुश्मनों के तरीक़े को अपना बैठे, हुसैनी मिशन, हुसैनी किरदार, हुसैनी इस्लाम का मज़ाक़ बनाने लगे, हज़रत हुसैन की मुक़द्दस ज़िन्दगी का सबक़ ज़ाया करने लगे।

आप देखें! वही मुसलमान जो नमाज़ में बड़े सुस्त और काहिल, वही मुसलमान जो मस्जिद तक जाना अपनी ताक़त से बाहर समझते थे, अलम, ताज़िया, जुलूस, मेंहदी, दुलदुल के साथ चक्कर लगाने में फ़ख़्र महसूस कर रहे हैं, हां वही मुसलमान जो दरबारे इलाही में हाज़िरी के लिए हर रोज़ पांच मर्तबा पुकार को सुनते और टाल जाते थे, आज बग़ैर किसी पुकार के अपने हाथों से बनाए हुए काग़ज़ी घरौंदों के सामने हाज़िरी लाज़मी समझेंगे। वही मुसलमान जो ज़कात तक अदा करने की ताक़त नहीं रखते थे, नज़र–ओ–नियाज़ में ख़र्च करने में दिल खोलकर अपने अरमान निकालेंगे। इस्लाम ने जिन चीज़ों को हराम बताया, सीना पीटना, मातम करना, उसकी सारी हदें पार कर देंगे। जुलूस के नाम पर बेहयाई होगी। मर्द–औरत सब सड़कों पर निकल आएंगे।

ख़ुदा की क़सम! यह तो हुसैन का दीन नहीं था, हज़रत हुसैन (रज़ि0) तो शहादत पेश करके ज़िन्दा व जावेद हो गए, फिर ज़िन्दों पर कैसा मातम?

हमारा गिला उनसे नहीं जिनके नज़दीक शहादत का कोई मक़ाम–ओ–मर्तबा नहीं, जो शहीद को मुर्दा तसव्वुर करके आहो फ़ुग़ा व नौहा ख़्वानी करते हैं, जिन्होंने सिर्फ़ उन्हीं नौहाख़्वानियों पर इस्लाम को महदूद कर दिया है, जिनका इस्लाम के मुक़द्दसात, इस्लाम के दूसरे एहकाम से कोई वास्ता नहीं।

गिला तो उनसे है, अफ़सोस तो उन पर होता है जो अपने आपको मुसलमान और फिर सुन्नी मुसलमान कहते हैं। सवाल तो उनसे है कि क्या आपके पास इस रिवाजी मुहर्रम की रस्मो रिवाज की ताईद में कोई दलील है? ग़ौर कीजिए! अपनी अक़्ल पर पूरा ज़ोर डालिये! किताबे इलाही व सुन्नते रसूल (स0अ0व0) या अहले सुन्नत के अक़ीदे में कहीं से भी कोई दलील निकल सकती हो तो ख़ुदा के वास्ते पेश कीजिए, ताकि हमें भी तो मालूम हो कि आख़िर वो कौन सी हदीस है, कौन सी दलील है जिससे सहाबा किराम (रज़ि0), ताबईन, तबए ताबईन सब ग़ाफ़िल रहे और आपको ख़बर हो गई। अगर कोई दलील नहीं मिलती तो लिल्लाह अपने दिल पर हाथ रखकर ख़ुद फ़ैसला कीजिए कि आप पर एक सुन्नी मुसलमान होने के नाते क्या फ़र्ज़ होता है! रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की तालीमात पर अमल करना फ़र्ज़ होता है, या राफ़िज़ियों की बातों पर?

ख़ुदा के वास्ते हज़रत हुसैन (रज़ि0) की अज़ीमुश्शान क़ुर्बानी का मक़सद ख़ुराफ़ात में ज़ाया न होने दीजिए, शहादते हुसैन एक मिशन है, उम्मत के लिए एक नमूना है, हुसैन नाम है पैकरे हक़ परस्ती का, ईमान–ओ–ऐक़ान और सब्र व शहादत के मुजस्समे का, मगर हुसैनी किरदार को अख़्तियार करने के बजाय हमने ढोल और तमाशों, बेकार की चीज़ों को अख़्तियार कर लिया, ख़ुद अपनी पाकीज़ा शरीअत का मज़ाक़ बनाया तो देखो! ख़ुदा कैसे हक़ीर से हक़ीर और ज़लील से ज़लील क़ौमों के ज़रिये हमें ज़लील कर रहा है।

अब आप मुर्दों का मातम मुर्दा क़ौमों के लिए छोड़ दीजिए, हुसैन (रज़ि0) आज भी ज़िन्दा व जावेद हैं, आप हुसैनी किरदार को अपना लीजिए, बातिल और ज़ालिम हुकूमतें आज फिर क़ायम हैं, आप उसके मुक़ाबले के लिए तैयार हो जाइये, हर क़िस्म की क़ुर्बानी पेश करने का जज़्बा पैदा कीजिए, साथ ही आप यह भी अज़्म कर लीजिए कि कुछ भी हो जाए हम शरीअत के एक भी जुज़ से समझौता नहीं कर सकते, आज फिर ज़ुल्म का बाज़ार गर्म है, हर सिम्त ज़ुल्म हो रहा है, ख़ासकर ज़ालिम अहले ग़ज़्ज़ा पर ज़ुल्म की इन्तिहा कर रहा है, यज़ीदी ताक़तें दनदनाती फिर रही हैं, हुसैन के नाम का दम भरने वाले तो नज़र आ रहे हैं मगर कोई हुसैनी लश्कर नज़र नहीं आता, काश कहीं से कोई हुसैन की फ़ौज नज़र आ जाए।

# इफ़ादात–ए–हकीमुल–उम्मत (रह०)

पीरी–मुरीदी की ग़रज़:

“जब पीरे कामिल मिल जाए तो और उससे मुरीद होने का इरादा करे तो पहले यह समझ ले कि मुरीद होने से ग़रज़ क्या है? क्योंकि मुरीद होने से लोगों की बहुत सी ग़रज़ें होती हैं, कोई तो यह चाहता है कि हम करामत वाले हो जाएं और हमको कश्फ़ से वह बातें मालूम होने लगें जो दूसरों को मालूम नहीं होतीं बल्कि ख़ुद पीर ही में यह होना ज़रूरी नहीं कि उससे करामतें हों, उसको कश्फ़ से ऐसी बातें मालूम हो जाया करें जो औरों को मालूम नहीं होती हैं तो बेचारा मुरीद उसकी क्या हवस करेगा। कोई यह समझता है कि मुरीद होने से पीर साहब बख़्शिश के ज़िम्मेदार हो जाएंगे, क़यामत में वह दोज़ख़ में न जाने देंगे चाहे जितने ही बुरे काम करते रहो, यह भी सरासर ग़लत है, ख़ुद जनाब रसूलुल्लाह (स०अ०व०) ने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को फ़रमाया:

“ऐ फ़ातिमा अपने को दोज़ख़ से बचाओ यानि अमल करो।”

कोई यह समझता है कि पीर साहब एक निगाह में कामिल कर देंगे, हमको न मेहनत करनी पड़ेगी, न गुनाह छोड़ने का इरादा करना पड़ेगा। इसी तरह काम बन जाता तो सहाबा (रज़ि०) को कुछ भी न करना पड़ता। जनाबे रसूलुल्लाह (स०अ०व०) से ज़्यादा कौन कामिल होगा? गो कहीं बतौर करामत के ऐसा भी हो गया है कि किसी बुज़ुर्ग ने एक निगाह में कामिल कर दिया लेकिन करामत के लिए यह ज़रूरी नहीं कि हमेशा हुआ करे और न यह ज़रूरी है कि हर वली से करामत हुआ करे, इस भरोसे पर रहना बड़ी ग़लती की बात है। कोई कहता है कि ख़ूब जोश–ओ–ख़रोश व सोरिश–मस्ती पैदा हो, ख़ूब नारे लगाया करें, गुनाह से आप छूट जाएं, गुनाह की ख़्वाहिश मिट जाए, नेक कामों का इरादा ही न करना पड़े, आप से आप हो जाया करें, दिल से वसवसे और ख़तरे सब मिट जाएं, बस एक बेख़बरी की कैफ़ियत रहा करे, यह ख़्याल पहले सब ख़्यालों से अच्छा ख़्याल समझा जाता है, लेकिन सबब इसका नावाक़िफ़ियत है, यह सब बातें कैफ़ियात और हालात कहलाती हैं और हालात का पैदा होना आदमी के अख़्तियार से बाहर है और हालात अगरचे बहुत उम्दा चीज़ हैं मगर मक़सूद नहीं, मक़सूद वही चीज़ हो सकती है जिसका हासिल करना अख़्तियार में हो। ग़ौर करने से मालूम हुआ कि इस क़िस्म की ख़्वाहिशों में नफ़्स की छुपी हुई मक्कारी है, वह यह कि नफ़्स आराम और मज़ा और नामवरी चाहता है, इन कैफ़ियतों में यह सब बातें हासिल हैं, जो शख़्स अल्लाह की रज़ामन्दी का तालिब होगा जिसके बारे में आगे बयान आता है कि दरवेशी से मक़सूद यही अल्लाह तआला की रज़ामन्दी है।

ऐसा शख़्स दो क़िस्म की ख़राबियों में मुब्तिला हो जाता है, क्योंकि यह कैफ़ियतें या हासिल होंगी या नहीं, अगर हासिल हो गईं तब तो बवजह इसके कि यह शख़्स उसको दरवेशी समझता था, अपने को कामिल समझने लगता है और उन्हीं कैफ़ियात पर बस करके परहेज़गारी और इबादतों को बेक़द्र ज़रूर समझने लगता है और अगर हासिल न हों तो ग़म में मरने खुलने लगता है और कुछ उसी की ख़ुसूसियत नहीं बल्कि जो शख़्स भी ऐसी बातों की ख़्वाहिश करेगा जो अख़्तियार से बाहर हैं, ग़म और परेशानी में मुब्तिला रहेगा।”

मुरत्तिब: मौलाना जमाल मलपा नदवी भटकली

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

*Monthly*
ARAFAT KIRAN
*Raebareli*

Issue: 7 ❊ *July 2025* ❊ Volume: 17

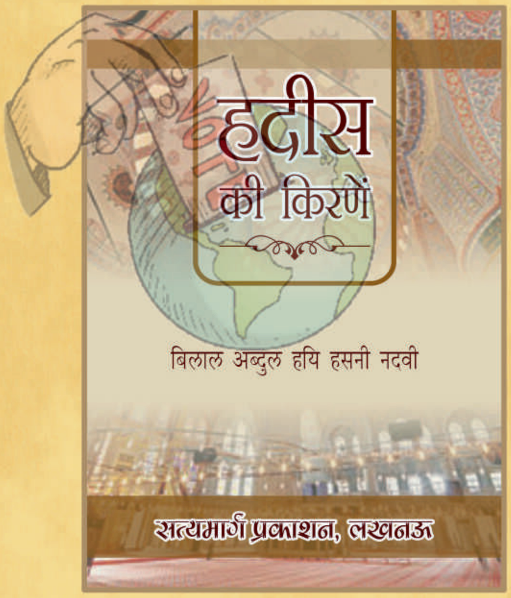
हदीस की किरणें
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
सत्यमार्ग प्रकाशन, लखनऊ

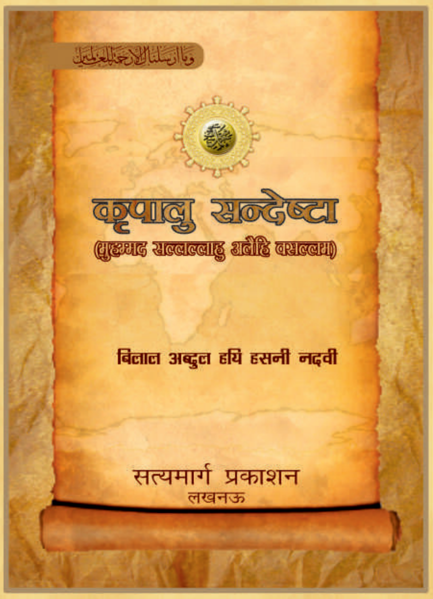
وما أرسلناك إلا رحمة للعالمين
कृपालु सन्देष्टा
(मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
सत्यमार्ग प्रकाशन
लखनऊ

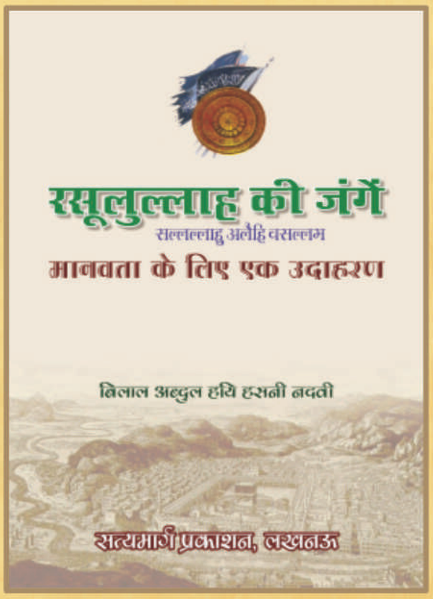
रसूलुल्लाह की जंगें
सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम
मानवता के लिए एक उदाहरण
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
सत्यमार्ग प्रकाशन, लखनऊ

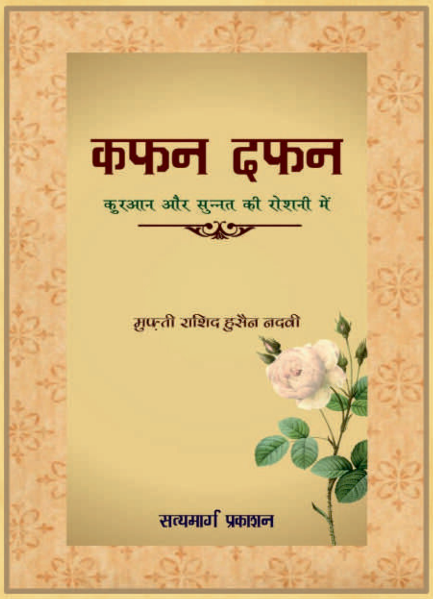
कफ़न दफ़न
क़ुरआन और सुन्नत की रोशनी में
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
सत्यमार्ग प्रकाशन

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
**MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI**
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.